श्रीमाताजीकी

बातचीत

भाग १

श्रीमाताजीकी

बातचीत

भाग १

अदिति कार्यालय
पांडिचेरो-२

श्रीमाताजी जब फ्रेंच भाषाकी क्लास लिया करती थीं तब उनके साथ छात्रोंकी जो बातचीत, प्रश्नोत्तर आदि होते थे उनके कुछ अंशोंको श्री नलिनिकांत गुप्तने अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'द योग आफ श्रीअरविंद' (The Yoga of Sri Aurobindo) के भाग सात और आठमें संगृहीत किया है। ये दोनों भाग हिंदीमें 'श्रीमाताजीकी बातचीत' के नामसे एक साथ प्रकाशित हुए थे। किंतु इस दूसरे संस्करणमें छपाई आदिकी सुविधाकी दृष्टिसे हमने उन्हें तीन भागोंमें विभक्त कर दिया है और उनमेंसे यह पहला भाग पहले प्रकाशित हो रहा है। श्रीमांकी दिव्य वाणीका हिंदीमें समादर हो रहा है और हमें इसे दुबारा प्रकाशित करनेका सौभाग्य प्राप्त हो रहा है, यह एक प्रसन्नताकी बात है।

—प्रकाशक

श्रीमाताजीकी बातचीत

१

भूत और भविष्यकालकी सिद्धियां

चेतनाका एक लोक है जिसे श्रीअरविंद अधिमानस कहते हैं। इसी अधिमानस लोकसे आनेवाली चेतनाकी शक्तियां आजतक समस्त जड़ और भौतिक जगत्पर, समस्त पृथ्वीपर — मैं पृथ्वीका जिक्र इसलिये कर रही हूं कि हमारा संबंध सीधे तौरपर और अन्यान्य क्षेत्रोंकी अपेक्षा कहीं अधिक इसीके साथ है — राज्य करती आ रही हैं। मनुष्य ज़िसे भगवान् कहते हैं वह भी अधिमानसकी ही एक शक्ति, एक देवता है। हम कह सकते हैं कि अबतक समूचा विश्व ही चेतनाकी इस स्थितिके अधीन रहा है। फिर भी इस अधि-मानसतक पहुंचनेके लिये तुम्हें बहुतसी मध्यवर्त्ती श्रेणियों या स्तरोंके भीतरसे गुजरना पड़ता है और जब तुम वहां पहुंचते हो तो तुम्हें सबसे पहले एक चकाचौंध उत्पन्न करनेवाली ज्योतिका अनुभव होता है जो प्रायः तुम्हें अंधा ही बना देती है। परंतु फिर भी तुम आगे बढ़ सकते हो और तुम्हें बढ़ना ही होगा और उसके परे जाना होगा। श्रीअरविंद कहते हैं कि अधिमानसके राज्यका अब निश्चित रूपसे अंत होने जा रहा है और उसके स्थानपर अतिमानसका राज्य स्थापित होगा। भूतकालकी सभी आध्यात्मिक अनुभूतियोंका संबंध इस अधिमानससे ही था। अतएव जिन्होंने भगवान्को पाया है और उनके साथ एकत्व प्राप्त किया है वे सब लोग इसको जानते हैं। अब श्रीअरविंदका यह कहना है कि अधिमानससे भी अधिक 'कुछ चीज' है और वह 'कुछ चीज' एक पग और भी ऊंची है और अब

उसी उच्चतर स्थितिके अवतरित होने और राज्य करनेकी वारी है। हमें अधिमानसके विषयमें बहुत अधिक बातचीत करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि सभी संतों और ऋषियोंने, सभी धर्मों और आध्यात्मिक साधनाओंने, धर्मग्रंथों और दर्शनोंने इसके विषयमें विस्तारपूर्वक कहा है। जिन सब देवताओंको मनुष्य जानते और पहचानते हैं वे सब इसी अधिमानसके मंदिरमें अधिष्ठित हैं। अब हम यह चाहते हैं, वर्तमान समयमें आवश्यकता इस बातकी है कि उन सब चीजोंका एक नये ढंगसे एक नया आविर्भाव, एक नयी अभिव्यक्ति हो जिन्हें प्राचीन कालमें बहुत थोड़ेसे लोग ही जानते थे। हम लोग यहां केवल भूत-कालकी चीजोंको ही दुहरानेके लिये नहीं आये हैं।

परंतु यह कितना कठिन है! लोगोंने सर्वदा और सर्वत्र जिन सब अनुभूतियोंको प्राप्त किया है, जिन सब चीजोंके विषयमें सुना और पढ़ा है, उनमेंसे निकलना उनके लिये कठिन है। उनके लिये अधिमानसकी ही परिभाषामें अतिमानसका विचार न करना, अधि-मानसके साथ अतिमानसको भी मिलाये विना रहना कठिन है। परे-की या भिन्न प्रकारकी किसी भी चीजकी कल्पना करनेमें वे असमर्थ हैं। श्रीअरविंद सर्वदा ही यह कहा करते थे कि जहां सभी प्राचीन योग समाप्त हो जाते हैं वहां मेरा योग आरंभ होता है। उनके योगमें सिद्धि प्राप्त करनेके लिये हमें सबसे पहले प्राचीन लोगोंके द्वारा प्राप्त सिद्धियोंकी अंतिम सीमापर पहुंचना ही होगा। दूसरे शब्दोंमें, हमें सबसे पहले भगवान्के दर्शन हो जाने चाहियें, भगवान्-के साथ एकत्व और तादात्म्य प्राप्त हो जाना चाहिये। यह भग-वान्, श्रीअरविंद कहते हैं कि, अधिमानस-लोकके परमात्मा हैं और वह भी मानवीय चेतनाके लिये एकदम अचिंत्य हैं, तथा उनतक पहुंचने-के लिये भी मनुष्यको चेतनाकी बहुतसी भूमिकाओंमेंसे गुजरना होता

है, और, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, इस स्तरपर भी मनुष्य चौंधिया जाता और चकमेमें पड़ जाता है।

प्राण-लोकमें भी सत्ताएं होती हैं और जब वे मनुष्यके सामने प्रकट होती हैं तब वह उन्हें परम देवता समझने लगता है। तुम इसे छद्मवेश कह सकते हो, पर यह बहुत सफल छद्मवेश होता है, क्योंकि जो लोग इसे देखते हैं उन्हें प्रायः ही यह पूरा-पूरा विश्वास हो जाता है कि जो कुछ वे देख रहे हैं वह निस्संदेह साक्षात् भगवान् ही हैं। और तो भी ऐसा भगवान् केवल प्राणलोककी एक सत्ता ही होता है। फिर तो अधिमानस लोककी सत्ताएं हम मनुष्यों-की तुलनामें अत्यंत अद्भुत हैं और जब हम ऐसी सत्ताओंके संपर्कमें आते हैं तब हम वास्तवमें आश्चर्यचकित हो जाते हैं। और अति-मानस और अतिमानसिक सत्ताएं तो और भी परे हैं। अतएव तुम अब समझ सकते हो कि तुम्हें कितनी दूरी पार करनी होगी।

परंतु एक प्रकारकी कृपा-शक्ति है जो तुम्हारी सहायताके लिये आती है। अगर किसी वैज्ञानिकको आगेकी ओर प्रगति करनेके लिये, कोई नया आविष्कार करनेके लिये उन सभी प्रयोगोंको फिरसे दुहराना पड़े जो पहले किये जा चुके हैं, उन सभी चीजोंको दुबारा पाना हो जिन्हें उसीकी धारामें दूसरे लोग भूतकालमें पा चुके हैं, तो उसका सारा जीवन ही भूतकालकी चीजोंको दुहरानेमें बीत जायगा और उसे किसी भी दूसरी चीजके लिये समय ही न मिलेगा। परंतु इसके बदले वैज्ञानिक बस एक किताब खोलता है या किसी दूसरे व्यक्ति-की सलाह लेता है जो प्राचीन चीजोंके विषयमें विशेष रूपसे अवगत हो और उस विषयमें जिस ज्ञानकी उसे आवश्यकता होती है उसे वह पूरा-पूरा जान लेता है। श्रीअरविंद चाहते थे कि आध्यात्मिक क्षेत्रमें भी इसी ढंगकी कोई चीज की जाय। वह तुमसे कहते हैं

कि तुम प्राचीन कालकी अनुभूतिको एकत्र करो,—वह सब पृथ्वीके इतिहासमें लिपिबद्ध है, और फिर आगे बढ़ो; उसीको आधार बनाकर तुम और भी ऊंचे स्तरोंपर उठ जाओ।

परंतु यहां तुम स्वाभाविक रूपमें ही पूछ सकते हो कि तब भला हमने अधिमानसिक व्यक्तियोंसे ही काम क्यों नहीं आरंभ किया, यहां तो केवल, विवेकानंद-जैसे व्यक्तियोंको ही लेना चाहिये था न कि सामान्य दुर्बल मानव-प्राणियोंको।

तुम समझते हो कि उस हालतमें काम अधिक आसान हुआ होता? वैसे व्यक्ति तो उलटे और भी कम ही अनुकूल और नमनशील होते। क्योंकि जिस व्यक्तिको पहले ही कोई अनुभूति हो गयी होती है उसे समझाना अत्यंत कठिन होता है। वह समझता है कि वह लक्ष्यतक पहुंच गया है और उसके लिये अब उससे आगे प्रगति करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। प्रायः ही, विशेषकर जिन मनुष्योंने प्रयास किया है और उस प्रयासका उद्देश्य प्राप्त कर लिया है, उनके विषयमें ऐसा होता है कि वे वहीं रुक जाते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि वे अंतिम लक्ष्यतक पहुंच गये हैं। वे वहां बैठ जाते और स्थायी रूपसे जम जाते हैं। वह उनका व्यक्तिगत लक्ष्य था और उन्होंने उसे पा लिया है। उनका मस्तिष्क जमकर स्थूल आकार ग्रहण कर लेता है और उनकी चेतना जमते-जमते पत्थरसी हो जाती है। वे वहीं सारे जीवन बने रहेंगे और कभी वहांसे हटना (आगे चलना) नहीं सीखेंगे। इसीलिये मैं कहती हूं कि जिन लोगोंको अपने अंदर कोई अनुभूति या सिद्धि प्राप्त हो चुकी है वे ही अनिवार्यतः अत्यंत उन्नत व्यक्ति नहीं हैं। ऐसे व्यक्तिमें सरलता, नम्रता, नमनीयताके तत्त्वका अभाव होता है जो उस व्यक्तिमें स्वभावतः ही आ जाता है जो यह जानता है कि वह अभी पूर्ण रूपसे

उन्नत नहीं हुआ है और उसे और भी आगे विकास करना है।

"सिद्ध पुरुष", यदि मैं इतने स्पष्ट रूपमें और कुछ कठोर रूपमें कहूं तो, एक ऐसा 'तैयार माल' होता है जो पूरा बन चुका है और जिसे अजायब घरमें प्रदर्शनके लिये शीशेके बक्समें रख देना चाहिये। वह एक नमूना होता है जो यह सूचित करता है कि क्या किया जा चुका है और क्या किया जा सकता था। परंतु वहां तुम्हें और अधिक करने योग्य कोई पदार्थ नहीं मिलता। मैं अपने कार्यके लिये कोई ऐसा आदमी लेना अधिक पसंद करूंगी जिसे थोड़ासा ज्ञान हो, पर जिसमें बहुत अधिक शुभेच्छा हो, एक महान् अभीप्सा हो, जो अपने अंदर इस लौको, आगे बढ़ते जानेकी इस आवश्यकताको अनुभव करता हो। हां, वह थोड़ा-सा जान सकता है, बहुत थोड़ासा ही अनुभव उसे हो सकता है, परंतु यहां (अर्थात् उस आदमीमें) एक ऐसा अच्छा मसाला है जिसकी सहायतासे हम दूर, बहुत दूरतक जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त एक दूसरी बात भी ध्यान देने योग्य है। जिस तरह पहाड़पर चढ़नेके समय एक ऐसा योग्य पथप्रदर्शक बहुत उपयोगी साबित होता है, यहांतक कि अनिवार्य होता है, जो तुम्हें ठीक-ठीक रास्ता दिखा सके और ऊंची-ऊंची चोटियोंतक चढ़ना तुम्हारे लिये आसान बना सके, उसी तरह आध्यात्मिक आरोहणमें भी एक पथप्रदंशक, अगर कोई पथप्रदर्शक पानेका सौभाग्य तुम्हें प्राप्त हो, उससे कहीं ऊंचे चढ़नेमें तुम्हारी सहायता कर सकता है जितना कि तुम स्वयं अपनी निजी शक्तिके बलपर ऊपर उठ सकते और अपनी निजी दृष्टिसे अपना लक्ष्य निश्चित करते — उस हालतमें तुम्हें अपनी खोजके लिये गर्व नहीं होता और न तुम व्यर्थकी खोजों और पूछताछमें अपना समय और शक्ति ही गंवाते हो।

यही कारण है कि मैं बच्चोंको — चाहे वे शरीरकी दृष्टिसे

बच्चे हों या आत्माकी दृष्टिसे — अधिक पसंद करती हूं और विद्या तथा अनुभूतिमें डूबे हुए वयस्क लोगोंसे भय खाती हूं।

कुंडलाकार जगत्

क्रमविकासकी धारा सीधी रेखामें नहीं चलती, बल्कि एक कुंडलके रूपमें चलती है, अर्थात्, यह लगातार एक ही दिशामें प्रगति नहीं करती, बल्कि इसमें होता है अग्रगमन, प्रत्यागमन और फिर अंतमें अग्रगमन। इस कुंडलाकार गतिका अर्थ यह है कि क्रमविकासकी क्रियामें सभी चीजें अवश्य प्रविष्ट हो जायं जिसमें कि केवल एक ही चीज प्रगति न करे और बाकी चीजें पीछे ही न पड़ी रहें, बल्कि सब-की-सब आगेकी ओर बढ़ें — सभी चीजें आगे बढ़ती हैं पर बढ़ती हैं भिन्न-भिन्न गतियोंसे और भिन्न-भिन्न आरंभ-बिंदुओंसे। और वे सीधे नहीं चलतीं जैसे कि कौआ उड़ता है, बल्कि ऊंची उड़ान लेनेवाले बाजकी तरह चक्कर काटती हुई चलती हैं। जब तुम वृत्तके एक बिंदुपर दृष्टि एकाग्र करोगे तो तुम उस बिंदुके हिसाबसे देखोगे कि बहुतसे अन्य बिंदु एकदम आगे नहीं बढ़ रहे हैं बल्कि पीछे हट रहे हैं और स्वयं वह बिंदु भी कभी-कभी उस स्थानकी ओर पीछे हटता हुआ मालूम होगा जिसे वह कुछ काल पूर्व पीछे छोड़ चुका है। मनुष्य कुछ ऐसे तत्त्वोंको चुननेके लिये पीछे जाता है जो प्रगतिके अंदर सम्मिलित नहीं किये गये हैं, जिनपर समुचित रूपसे क्रिया नहीं की गयी है। प्रायः ही ऐसा होता है कि जब तुम एक विषयमें उन्नति करते हो तो दूसरेको भूल जाते हो; इसलिये तुम्हें पीछे मुड़ना होता है और उपेक्षित विषयको लेना होता है। इस तरह तुम्हें

मानों बार-बार चक्कर काटना पड़ता है जबतक कि तुम अपनी संपूर्ण सत्ताको शामिल नहीं कर लेते, यहांतक कि संपूर्ण विश्वको ही अपने बाहु-पाशमें नहीं ले लेते। परंतु, जब तुम उपेक्षित अवयवको इकट्ठा कर लेते हो औंर उस मूल स्थानपर वापस आते हो जहांसे तुम पीछे हटे हुए प्रतीत हुए थे, तो तुम देखते हो कि तुम एकदम उसी बिंदुपर नहीं हो, बल्कि एक उच्चतर लोंकमें उससे मिलते-जुलते एक बिंदुपर आ गये हो। यही चीज महज वृत्तका ही नहीं, वरन् कुंडलका भी रूप ले लेती है।

इस जगत्में बिंदुओंकी एक अनंत संख्या घूम रही है और उनमें-से प्रत्येक बिंदु एक कुंडल तैयार कर रहा है; अतएव इस जगत्में कुंडलोंकी भी एक अनंत संख्या विद्यमान है। और ये कुंडल केवल पास-पासमें ही नहीं हैं, बल्कि ये एक-दूसरेको काटते हैं और इस तरह एक पारस्परिक विपरीतता और विरोधिताका भाव उत्पन्न करते हैं। अतएव तुम यदि जागतिक प्रगतिकी गतिधाराको एक साथ समग्र रूपमें देखना चाहो तो तुम थोड़ा चकरा जाओगे। तुम देखोगे कि वहां कितनी सारी रेखाएं तो ऐसी हैं जो आगे बढ़ रही हैं और कितनी सारी ऐसी हैं जो उन्हींके साथ-साथ पीछे हट रही हैं। कुछ तो सामने प्रकट हो रही हैं और दूसरी पीछेकी ओर हट रही हैं और उनमेंसे कोई भी स्वतंत्र या अपने-आपमें पूर्ण नहीं है। वहां वे एक तरहसे मिली-जुली हैं और यहांतक कि उनमें एक प्रकार-का परस्पर-संबंध भी है।

इस तरह इस विश्वके विषयमें हम यह कल्पना कर सकते हैं कि यह एक गोला है जो एक-दूसरेको काटनेवाले कुंडलोंसे बना है और जिसमें कुंडलोंकी संख्या अनंत है। हम प्रत्येक कुंडलको एक अलग रंग दे सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक कुंडल प्रकृतिकी क्रियाके एक-

एक पक्षको उपस्थित करता है। विश्वके नमूनेके रूपमें शायद हम इस प्रकारके एक गोलेका निर्माण कर सकते हैं। इस निर्मित गोलेमें एक कुंडलकी परिधिका केवल एक अंश ही बाहरकी ओर है और बाकी अंश गोलेके भीतर हैं और अपने विशिष्ट रंगके कारण दिखायी दे सकता है, बशर्त्ते कि हम गोलेको एक पारदर्शक वस्तु समझें। अब ये ही बाहरवाले असंख्य वृत्तांश गोलेकी ऊपरी सतहका निर्माण करते हैं। उसके भीतरका भाग अवश्य ही कुंडलोंसे भरा हुआ है, सिवा कुंडलोंके उस भागके जो बाहर है। और फिर, यद्यपि वे कुंडल एक-दूसरेको बार-बार काटते और पार करते हैं, किसी ऐसे स्थूल पिंडका निर्माण नहीं करते जिसके आरपार दिखायी न दे। हम उसके आर-पार देख सकते हैं और विभिन्न रंगोंकी चमकती रेखाओंका अनुसरण कर सकते हैं। बस, इसी रूपमें मैं इसे देखती हूं। अगर संभव हो तो तुम इसका एक ज्यामितिक चित्र बनानेकी चेष्टा कर सकते हो।

प्रकृतिकी अपनी एक योजना है। यह योजना मनुष्यकी बनायी हुई सुसंगत बौद्धिक योजना-जैसी नहीं है। प्रकृतिकी योजना एक अभीप्सासे, एक निर्णय और एक लक्ष्यके द्वारा निर्मित है। परंतु उसका तरीका बिलकुल ही ऊटपटांग है, ऐसा ही वह मनुष्यको प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि प्रकृति प्रति मुहूर्त्त प्रयोजनके दबावके अधीन होकर चल रही है। वहां हम देखते हैं आगे बढ़ना, पीछे हटना, परीक्षा करना, खंडन करना, चीजोंको तोड़ना-फोड़ना, परिश्रम करके बनाना और फिर नष्ट-भ्रष्ट कर डालना। वहां पूराका पूरा गड़बड़झाला दिखायी देता है। वह एकको आरंभ करती है, उसे आधा करके छोड़ देती है, एक दूसरी चीजको लेती है, एक चीजका एकदम परित्याग कर देती है, फिर किसी छोड़ी हुई चीजको

नये सिरेसे आरंभ करती है, बनाती है, बार-बार बनाती है, बिगाड़ देती है, अलग करती है, फिर सब कुछ मिला-जुला देती है। वह एक ही बिंदुसे तो नहीं पर एक साथ ही लाखों-करोड़ों पथोंसे आगे बढ़ती है, और प्रत्येक पथकी एक अपनी गति होती है, अपना छंद होता है। वहां एक ऐसी उलझन दिखायी देती है जो बेमतलब मालूम होती है। पर फिर भी वहां एक योजना है, वह एक लक्ष्य-का अनुसरण करती है जो उसे बहुत स्पष्ट दिखायी देता है, यद्यपि मनुष्यकी आंखोंके लिये वह ढका हुआ है। प्रकृतिकी योजनाकी इस जटिल एकताका ही थोड़ासा आभास देनेके लिये मैंने पहले उस कुंडलाकार गोलेकी बात कही थी।

तुम एक अधिक अच्छी व्यवस्था उत्पन्न कर सकते हो, तुम कम अपचय और अधिक निपुणताके साथ एक अधिक सज्ञान सुसंगठन ला सकते हो। परंतु उसके लिये सबसे पहले मनुष्यको अपने आंतरिक संग-ठनको परिवर्तित करना होगा। उसे अपनी चेतना और सत्तामें एक नयी व्यवस्था, एक नया जगत् उत्पन्न करना होगा।

वर्द्धनशील विश्व

यह जगत् एक अभिव्यक्ति है अर्थात् अनंत संभावनाओंका प्रस्फुटन है। यह प्रस्फुटन बंद नहीं हो गया है, यह चल रहा है और चलता रहेगा, जो कुछ पीछेकी ओर और गुप्त रूपमें विद्यमान है उस सबको बाहर प्रकट करेगा या भौतिक अभिव्यक्तिके अंदर सम्मिलित करेगा। हम विश्वके विषयमें ऐसी कल्पना कर सकते हैं कि वह एक क्षेत्र या गोला है, एक समष्टि या समवाय है और

यहां जो कुछ है और प्रकट हो रहा है वह सब उसमें है। इस सृष्टिचक्रके मानो परे और बाहर हैं परात्पर तत्त्व, अपनी निजी स्थितिमें विराजमान हैं सर्वोच्च भगवान्। परात्पर तत्त्वका अर्थ है अप्रकाशित तत्त्व। परंतु इसका अर्थ 'शून्य' नहीं है। क्योंकि जो कुछ अभिव्यक्त होनेको है उस सबको, उनमेंसे प्रत्येक और एक-एकको, उसके प्रच्छन्न और साररूपमें, एक बीजके रूपमें, यह अपने अंदर धारण करता है। सब कुछ यहां एक गुप्त संभावनाके रूपमें, सत्ताके एक मौलिक सत्यके रूपमें विद्यमान है — सब कुछ यहां महज एक सामान्य भावनाके रूपमें ही नहीं है, बल्कि प्रत्येक ब्योरेमें विद्यमान है, मानों वहां सब कुछ आणविक स्थितिमें हो, मानो आदिम जीवपंक (plasm) में विद्यमान 'क्रोमोसोम' (chromosome) की जैसी कोई चीज हो। वह परात्पर तत्त्व काल और देशके परे है। अभिव्यक्ति या सृष्टि आरंभ होती है काल और देशकी रचनाके साथ, उस ढांचेके साथ जिसमें छिपी पड़ी वस्तुओंको धीरे-धीरे सामने ले आया जाता है और खोलकर रख दिया जाता है। परात्पर तत्त्व वह चेतना है जो अपने-आपमें लीन है, जो स्वयं अपने ही साथ एक हो रही है; अभिव्यक्ति वह चेतना है जो जग गयी है और अपने एक विषयके रूपमें अपने-आपको देख रही है।

अब, कोई चाहे तो वह ऐकांतिक रूपसे अव्यक्तकी स्थितिमें आसीन या प्रतिष्ठित हो सकता है; ऐसे व्यक्तिके लिये अनंत और शाश्वत सत्ता एक चिरस्थायी सद्वस्तु है, वहां भूत या भविष्य-जैसी कोई चीज नहीं, वहां प्रत्येक चीज बस है। वहां मनुष्य जानता है और एक सुनिश्चित सद्वस्तुकी उपस्थितिमें रहता है; जो कुछ हो चुका है, जो कुछ होगा — जैसा कि यह हमें प्रतीत होता है — सब कुछ वहां एक ही स्तरपर और एक ही मुहूर्त्तमें संसिद्ध हो चुका

है (यद्यपि स्तर और मुहूर्त्त शब्द वहां ठीक-ठीक लागू नहीं होते)। वह तो संपूर्ण रूपसे निर्दिष्ट तत्त्वोंका लोक या विशेष अवस्था है। वहां स्वतंत्र चुनाव या अनिर्दिष्टता, अप्रत्याशित और अदृष्टपूर्व वस्तुके लिये कोई स्थान नहीं।

इसके विपरीत, अभिव्यक्तिका प्रदेश निश्चित रूपसे आकस्मिक और अगणित वस्तुओंका अर्थात् स्वतंत्र इच्छा-शक्तिका क्षेत्र है। यहां वे चीजें प्रकट होती हैं जो पहले नहीं थीं, वे शक्तियां कार्य करने लगती हैं जिनकी आशा या यहांतक कि कल्पना भी नहीं की गयी थी। वे सब ऐसी धाराओंका अनुसरण करती हैं जो निरंतर स्थानांतरित और परिवर्तित होती रहती हैं। यह, जैसा कि उपनिषदोंने नाम दिया है, संभूतिकी अवस्था है और यूनानी दार्शनिक हिराक्लिटस् (Heraclitus) इसका वर्णन इन शब्दोंमें करता है—panta reei अर्थात् प्रत्येक चीज बहती रहती है। यहां, जो कोई व्यवस्था एकदम स्थायी और भविष्यवाणी करने योग्य प्रतीत होती है वह भी प्रायः किसी अन्य क्षेत्रके किसी नये और अद्‌भुत प्रभावके सहसा आ उपस्थित होनेके कारण एकाएक उलट जाती है।

परंतु अव्यक्त और व्यक्त दोनोंके बीचमें, सीमांत प्रदेशमें, मानों चेतनाकी एक स्थिति है जो इन दोनोंको एक सर्वांगीण दृष्टिके अंदर एकत्र कर देती है, वह स्थिति असंभूति और संभूति दोनोंकी एक ही एकहरी गति है। यही है अतिमानस। यह वह बिंदु है जहां, अव्यक्तके अंदर जो कुछ है या रहता है वह ठीक अभिव्यक्तिके अंदर 'संभूत' होता है, ऊपर अचल भावसे स्थित शुद्ध सत्य या सद्वस्तु चलायमान होती है और संभावनाओंकी क्रीड़ाके द्वारा प्रकट होना या अपनेको खोलना-पसारना आरंभ करती है। यह एक चल-चित्र जैसा है जो समेटकर एक बंडलके रूपमें तबतक रखा रहता है जब-

तक कि वह 'प्रोजेक्टर' मशीनपर चढ़ाकर जीवनके पर्देपर और बड़े आकारमें प्रदर्शित करनेके लिये धीरे-धीरे खोला नहीं जाता।

फिर, परात्पर एक सर्वांगपूर्ण सद्वस्तु है, क्योंकि वह सबको और संपूर्णको धारण करता है, परंतु उसका विस्तार निर्दिष्ट है—वह अव्यय, है. वह न तो बढ़ता है न घटता; वह स्थाणु, अचल है—**स्थाणुरचलोऽयम्**। दूसरी ओर, विश्व केवल चल ही और परिवर्तित ही नहीं हो रहा है वरन् वह निरंतर बढ़ और फैल भी रहा है। क्योंकि वहां नयी-नयी संभावनाएं सत्य हो रही हैं और उसके उपादानोंके योगफलमें वृद्धि कर रही हैं। परात्पर, अव्यक्तके अंदरसे सर्वदा ही शक्यताएं नीचेकी ओर धावित हो रही हैं और विश्वमें क्रियाशील बनकर इसे अधिकाधिक समृद्ध बना रही हैं।

इसके अतिरिक्त, विश्वका यह फैलाव (विस्तार) केवल विभिन्न वस्तुओंका एकत्रित होकर बड़ा होना नहीं है, बल्कि एक प्रकारकी वृद्धि है, विकास है, कहनेका तात्पर्य कि, यह विकास-कार्य ज्ञानपूर्वक परिचालित किया जाता है और इसका एक अर्थ और उद्देश्य है तथा इसके सामने एक लक्ष्य है। सच पूछा जाय तो जो संभावनाएं यहां नीचे क्रीड़ारत होती हैं, जो तत्त्व यहां प्रवेश करते हैं वे सब उतने ही अंशमें आवश्यक हैं जितने अंशमें वे इस विश्व-लीलाको सार्थक बनानेमें, इस नाटकके उपसंहारको कार्यान्वित करनेमें सहायक होते हैं। हम फिरसे चलचित्रकी उपमाको ले सकते हैं और कह सकते हैं कि खुलती हुई फिल्म इस कारण मजेदार होती है कि वह एक क्रमबद्ध और विकसनशील कहानी कहती है, जिसका आरंभ, मध्य और अंत होता है। ठीक उसी तरह यह अभिव्यक्ति भी एक संबद्ध कहानी कहती है—यह कहानी कोई मूर्खतापूर्ण प्रलाप नहीं है, वरन् इसका एक लक्ष्य है; यह किसी उद्देश्यसे सुनिर्मित एक प्रक्रिया है।

यहांतक कि व्यष्टिसत्ताकी तरह यह एक सुगठित सत्ता है जो अविरत बढ़ रही है और अपने अंदर निहित संभावनाओंको प्रकट कर रही है, अपनी अभीप्सा और भवितव्यताकी उच्च सफलताको ओर जा रही है।

इस अर्थमें अभिव्यक्ति अनभिव्यक्त परम सत्ताकी अपेक्षा अधिक पूर्ण — और अधिकाधिक पूर्ण — एक सद्वस्तु है। अव्यक्त, परात्पर सत्ता एक पूर्णांग सद्वस्तु है, पर अभिव्यक्ति एक अधिक पूर्ण सद्वस्तु है, क्योंकि यह अपने सत्स्वरूपमें, अपने वास्तविक ठोस प्राकटचके अंदर वृद्धि करती रहती है।

विश्व-रूपी नाग

प्रायः विश्वकी कल्पना एक नागके रूपमें की जाती है जो गेंडुरी मारकर अपने-आपको खा रहा है, अपने सिरको पीछेकी ओर मोड़कर अपनी पूंछ निगल रहा है। यह एक ऐसे वृत्त या गोलेका रूपक है जो समूचे जगत्को घेरे हुए है और एक ऐसी चीजका रूपक है जो आदि-अंत-रहित, अनंत है। यह रूपक हमारे मनमें यह धारणा भी पैदा करता है कि एक नित्यप्रसरणकी क्रिया चल रही है, अर्थात् सतत सृष्टि हो रही है, परंतु उसके साथ ही उसमें पीछेकी ओर मुड़नेकी गति भी है: विश्व एक सीधी रेखामें नहीं बल्कि वृत्तके आकारमें प्रसारित हो रहा है।

जो हो, विश्व एक जटिल सत्ता है। यह केवल एक ही स्तरसे नहीं बना है, बल्कि इसमें एक-दूसरेपर स्थापित अनेक स्तर हैं। इस तरह अंतिम तलमें नींवके रूपमें तो है भौतिक — जड़ — और

शिखरपर चरम सीमाके रूपमें विद्यमान है अत्यंत सूक्ष्म, आध्यात्मिक स्तर : इन दोनोंके बीचमें बहुतसी श्रेणियां हैं जिनकी संख्या देखनेके तरीकेके अनुसार अलग-अलग दिखायी देती है।

फिरसे नागके रूपकपर लौटकर हम कह सकते हैं कि उसका सिर आत्माको, सर्वोच्च चेतनाको सूचित करता है, और उसकी दुम दूसरे छोरको, जड़ या चरम अचेतनाको। इसके अतिरिक्त यह रूपक इस महान् सत्यका सुन्दर चित्र प्रदान करता है कि दोनों छोर मिलते हैं, सिर पीछेकी ओर झुकता है और पूंछको पकड़ता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे इसका अर्थ यह है कि यदि कोई अपनी चेतनामें अधिकाधिक ऊपर उठे, शरीर-चेतनासे आरंभ कर प्राण, मन और अधिमनको पार करता हुआ एकदम चेतनाके मूलमें, उसके शीर्ष और अग्रभागमें पहुंच जाय तो, कहनेमें विचित्र-सा लगता है, वह एकाएक अपनेको जड़-तत्त्वके हृदयमें उतरा हुआ पाता है। गुह्य भाषामें इसी बातको इन शब्दोंमें व्यक्त किया जाता है कि जो चेतना उच्चतम शिखरपर चमक रही है वही यहां नीचे निर्जीव जड़तत्त्वकी गुहामें भी निहित है। यदि कोई काफी ऊंचा, एक-एक सोपान पार करता हुआ, सोपान-श्रेणीके अंतिम छोरपर पहुंच जाय तो वह घूमकर, समस्त सोपानोंको फिरसे पार किये बिना ही, ठीक उसी स्थानपर आ जाता है जहांसे वह रवाना हुआ था। इसी तरह इसके विपरीत यदि कोई काफी गहराईतक, जड़-तत्त्वके सबसे परले सिरेतक, निश्चेतनाकी अंतिम सीमातक पैठ जाय तो वह उसी अनंतताके पूर्ण प्रकाशमें पहुंच जाता है जो ऊपर और नीचे चारों ओर फैली हुई है।

यहां हमें उस विचित्र सिद्धांतकी याद हो आती है जिसे किसी आधुनिक वैज्ञानिकने जगत्के वर्तुल स्वरूपके विषयमें निर्धारित किया

था। उसका कहना है कि चूंकि विश्व अनंत वस्तुओंसे परिवेष्टित एक लोक है इसलिये यह बिलकुल संभव है कि जिस विशिष्ट नक्षत्रको तुम अपने सामने देखते हो वह सीधे तुम्हारे सामने बिलकुल ही अवस्थित न हो, बल्कि संभव है कि वह अपनी किरणें भेजता हो और उन्होंने समूचे गोलेके चारों ओरसे घूमकर, मानो पीछेसे आकर, तुम्हें पकड़ा हो!

जगत्का रहस्य

क्या तुमने कभी अपने-आपसे यह प्रश्न पूछा है कि आखिर यह विश्व, कम-से-कम यह पृथ्वी, जिसके साथ हमारा इतना अधिक संबंध है और जो हमें इतनी वास्तविक, इतनी सत्य प्रतीत होती है, है ही क्यों? यदि तुमने ऐसा न किया हो तो जहांतक तुम्हारा संबंध है यह बात संभवतः बहुत बुद्धिमानीकी ही समझी जायगी! मैं बहुत वार तुमसे तेओं (Théon) की चर्चा कर चुकी हूं। वे सचमुचमें अपने ढंगके एक संत थे। लोग उनके पास आया करते और उनसे प्रश्न पूछा करते। बहुतसे लोगोंने उनसे पूछा कि यह विश्व क्यों है। वे उत्तर देते, "परंतु उससे तुम्हारा क्या?" कुछ लोग पूछते, "भला यह विश्व इस तरहका क्यों है?" इसके उत्तरमें वे कहते, "यह जो है सो है, इससे तुम्हारा क्या?" अन्य लोग फिर टिप्पणी करते, "मैं संसारको संतोषजनक वस्तु नहीं मानता।" यहां हम असली प्रश्नके थोड़ा अधिक नजदीक आना आरंभ करते हैं। जो लोग संसारको असंतोषजनक पाते हैं उनसे मैं कहूंगी, "काममें लग जाओ, इसे बदलनेकी कोशिश करो। ऐसा रास्ता ढूंढ़ निकालो जिससे यह

दूसरी तरहका हो जाय, जिससे इसे अधिक अच्छा बनाया जा सके। दुनियाकी चीजें जैसी हैं वैसी हैं, उनके विषयमें कल्पना-जल्पना करने और परेशान होनेसे कोई लाभ नहीं। बस, सुधारके उपाय ढूंढ़ निकालो जिसमें कि उनको वैसा बनाया जा सके जैसा उन्हें होना चाहिये। भला चीजें अभी जैसी हैं वैसी ही क्यों हैं ? यह बात नहीं कि कोई इसका कारण नहीं जान सकता, भले ही वह सब समय इस विषयमें निस्संदिग्ध न हो। परंतु सबसे उत्तम कार्य यह है कि चीजें जैसी हैं वैसी ही उन्हें लिया जाय और उन्हें जैसा होना चाहिये वैसा उन्हें बनानेकी, उस रूपमें उन्हें बदल देनेकी कोशिश की जाय। अब आश्चर्यकी बात यह है कि यदि तुम सच्चे हो, यदि तुम सच्चाईके साथ जानना और काम करना चाहते हो तो तुम्हें पता लगेगा कि चीजें जैसी हैं वैसी क्यों हैं — उनका कारण, मूल उद्गम और उनकी प्रक्रिया सब कुछ तुम जान जाओगे, क्योंकि वे सब एक ही चीज हैं। वस्तुओंके मूलमें बस एक ही सत्य है; अगर वह वहां न होता तो कोई भी चीज न होती। यदि तुम उस सत्यको पकड़ लो तो तुम उसके साथ-ही-साथ सृष्टिके मूल और उसे परिवर्तित करनेके उपायोंको भी पकड़ लोगे। दूसरे शब्दोंमें यदि तुम भगवान्‌के साथ संस्पर्श स्थापित कर लो — क्योंकि भगवान् ही वह आधार हैं — तो सभी वस्तुओंकी कुंजी तुम्हारे हाथमें आ जायगी, तुम, क्यों, कैसे और परिवर्तनकी प्रक्रिया, सब कुछ जान जाओगे। तब एकमात्र करनेकी चीज यह है कि बस करना आरंभ कर दिया जाय। परंतु तुम कह सकते हो कि संसारमें और संसारके लिये कार्य करना तुम्हारे लिये बहुत अधिक, बहुत कठिन, बहुत बड़ा है। अच्छा, तो फिर अपने लिये करना आरंभ कर दो। तुम एक छोटा-सा पिंड हो, विश्वका एक प्रतीक या प्रतिनिधि हो। अब

तुम उस कणको (अर्थात् विश्वके अंशरूप अपने-आपको) बनाना और गढ़ना अपना कार्य बना लो। इसीपर मनको एकाग्र करो और अपने अंदर पैठ जाओ — तुम अपनी उस नन्हीं-सी व्यष्टि-सत्ताके अंदर भी उस चिर-अभिलषित कुंजीको पा जाओगे।"

विश्वके इतिहासका अभिलेख

सृष्टिके आरंभसे लेकर अबतक पृथ्वीपर जो कुछ हुआ है वह सब, उसकी एक-एक चीज, बिना किसी अपवादके प्रत्येक चीज चेतना-के किसी विशेष लोक या क्षेत्रमें कहीं-न-कहीं लिखी रखी है। जो कुछ मनुष्यने सोचा-विचारा है, वह सब, उसके अन्वेषण और आवि-ष्कार, उसके निर्णय और सिद्धांत, सब कुछ ज्योंका त्यों रखा हुआ है, सावधानीके साथ संचित है। यदि तुम पृथ्वीके विगत इतिहास-की किसी बातको जानना चाहते हो, किसी विशेष समय और स्थानपर घटी घटनाको जानना चाहते हो तो बस तुम उस जगत्में अपने-आपको उठा ले जाओ और उन अभिलेखोंको ध्यानपूर्वक देख लो।

वह एक बहुत विचित्र स्थान है, एक विशाल पुस्तकालयकी जैसी चीज है। उसमें मानों असंख्य कमरे हैं, प्रत्येक कमरेमें एक-एक विशिष्ट विषयका सारा ज्ञान भरा हुआ है। उन कमरोंका आकार वर्गाकार मालूम होता है और साधारणतया वे बंद रहते हैं। अगर तुम किसी विशिष्ट वर्गमें जाकर कुछ देखना चाहते हो तो तुम एक बटन दबाते हो और वह खुल जाता है तथा उसमें लिखित कागजों-का एक पुलिंदा बाहर निकल आता है। तुम उस पुलिंदेको

खोलते हो और जो कुछ तुम चाहते हो उसे खोज लेते हो। वहां चारों ओर, ऊपर और सर्वत्र, इस तरहके सहस्रों और सहस्रों और सहस्रों कमरे और पुलिंदे हैं। सौभाग्यवश मनोमय जगत्‌में तुम जहां चाहो जा सकते हो, ऊपर चढ़नेके लिये तुम्हें "लिफ्टों" या सीढ़ियोंकी आवश्यकता नहीं होती।

परंतु प्रश्न यह है कि आखिर वहां जाया कैसे जाय। अच्छा, पहली बात यह है कि तुम अपने मनको संपूर्णत: निश्चल-नीरव बना दो। मानसिक चिंतनको, चंचलताको तुम्हें पीछे छोड़ना ही होगा, कोई विचार तुम्हारी चेतनामें नहीं घुसना चाहिये, उसे शांत और स्थिर, पानीकी एक स्वच्छ सतहकी तरह या चिकने और साफ-सुथरे शीशेकी तरह बने रहना चाहिये। ऊपर जो मैंने एक पुस्तकालयका वर्णन किया है वह महज एक रूपक है, असली चीज तो कुछ दूसरी ही है। जो हो, इस तरहसे तुम्हें उस विषयकी कुछ धारणा हो जायगी जिसका तुम अनुसरण कर सकते हो। निश्चल-नीरव मनमें तुम चेतनाका एक बिंदु तैयार करते हो और उसे तुम आवश्यक जानकारी इकट्ठा करनेके लिये एक गुप्तचरके रूपमें भेजते हो। चेतनाके इस बिंदुको पूर्ण रूपसे मुक्त, अनासक्त होना चाहिये और जहां वह चाहे वहां जानेके लिये उसे स्वतंत्र होना चाहिये। क्योंकि तुम यदि अपने ही मनकी सामान्य क्रियाओंके साथ किसी भी रूपमें उसे बांध रखो तो जो कुछ तुम्हारे मस्तिष्कमें है उससे आगे तुम नहीं जा सकोगे। तुम्हें अपने मस्तिष्कको एकदम खाली कर देनेकी योग्यता प्राप्त करनी होगी, तुम्हें इस प्रकारकी कोई भी पूर्वनिर्धारित धारणा या भावना नहीं रखनी चाहिये कि तुम्हारी समस्याका समाधान इस तरह या उस तरह हो सकता है। जैसा कि मैं कह चुकी हूं, तुम्हारा मन एक बिलकुल सादा पृष्ठ, एक साफ-सुथरी स्लेट (पट्टी)

वन जाना चाहिये और उसपर कुछ भी लिखा नहीं होना चाहिये, एक निशानतक भी नहीं होना चाहिये। उसके स्थानपर होनी चाहिये सत्यको जाननेकी एक सच्ची अभीप्सा, तुम्हें पहलेसे ही यह नहीं मान बैठना चाहिये कि वह इसी प्रकारका सत्य होगा; अन्यथा तुम अपनी ही रचनाको अपने मस्तिष्कमें पाओगे।

निश्चय ही तुम अपनी आंतरिक यात्राद्वारा प्राप्त ज्ञानको बाहरी ज्ञानके द्वारा, जो कुछ दूसरोंने जाना है या जो कुछ पुस्तकोंमें लिखा हुआ है उसके द्वारा जांच सकते हो और सुधार सकते हो। आंत-रिक ज्ञानके स्थानपर बाहरी ज्ञानको ला बैठानेकी कोई जरूरत नहीं है और न ऐसा करना ही चाहिये, पर बाहरी ज्ञान उसका पूरक होता है और दोनोंको ही एक-दूसरेको संपुष्ट करना चाहिये और पूर्ण बनाना चाहिये। परंतु वहां एक प्रकारका मिश्रण भी होता है जिसके विषयमें तुम्हें खूब सावधान रहना चाहिये। तुम्हारा नीरव मन, तुम्हारी आंतरिक चेतना तो आवश्यक ज्ञान प्राप्त करती है, पर जैसे ही तुम उसे व्यक्त करना या सामान्य शब्दोंमें रूपां-तरित करना चाहते हो अर्थात् जैसे ही तुम्हारा मस्तिष्क फिरसे सक्रिय हो उठता है वैसे ही वह अपने निजी मसालों और जान-कारियोंको दे सकता है और अक्सर देता ही है और मूल ज्ञान अस्त-व्यस्त और विकृत हो जाता है। कभी-कभी तुम ऐसा कर सकते हो कि तुम अपनी देखी हुई या अनुभव की हुई चीजोंको अत्यंत निष्क्रिय भावसे बोलते जाओ और जैसे-जैसे तुम बोलो वैसे-वैसे कोई दूसरा आदमी उसे लिखता जाय। तुम्हें ठीक वैसा ही बोलना चाहिये जैसा कि तुम देखते हो और दूसरेको ठीक-ठीक वैसा ही लिखना चाहिये जैसा कि वह सुनता है।

मैंने तुम्हें पुस्तक पढ़नेकी उपमाभर दी है। परंतु वह, जैसा

कि मैं कह चुकी हूं, केवल एक रूपक है। वास्तवमें वह एक प्रकार-की अनुभूति, एक दर्शन है। और वह अनुभूति एक दृश्यके रूपमें आ सकती है अथवा एक वर्णनके रूपमें आ सकती है। दूसरे अवसरों-पर वह किसी विशेष प्रश्नका एक सीधा-सादा उत्तर हो सकती है। अभिलेखोंके अनेक प्रकार और भेद हैं और तुम जिस चेतनामें जाते हो उसके प्रकारों या स्तरोंके अनुसार वे भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं।

स्वभावतः ही यह प्रक्रिया आसान नहीं है और एक मामूली किताबकी तरह यह प्रत्येक आदमीको प्राप्य नहीं है। इसके लिये एक विशेष प्रकारकी योग्यता और एक विशिष्ट साधनाकी आवश्यकता होती है।

स्वतंत्रता और भवितव्यता

एक विशेष दृष्टिकोणसे देखा जाय तो ऐसा मालूम होगा कि यहां इस जड़ जगत्में जो कुछ घटित होता है, वह इससे पहले ही सत्य-सत्ताके दूसरे स्तरपर जो कुछ घटित हो चुका होता है या विद्य-मान रहता है, उसीकी पुनरावृत्ति या अभिव्यक्ति होता है। इस तरह इस जगत्में कोई भी स्वतंत्र इच्छा नहीं रह जाती, प्रत्येक चीज पहलेसे निर्धारित है। परंतु दूसरे दृष्टिकोणसे हम कह सकते हैं— और यह उतना ही सत्य है— कि यह जगत् यहांपर प्रत्येक क्षण नये रूपमें सृष्ट हो रहा है; यह किसी भूतकालीन घटना, किसी पहलेसे विद्यमान व्यापारका ही मात्र पुनरावर्तन या एकाएक प्राकट्य नहीं है, बल्कि ऐसी चीज है जो सदा ही नयी और ताजी होती है। उदाहरणके लिये एक स्थूल वस्तुको ले लो जो विशेष प्रकारसे कुछ

रासायनिक द्रव्योंके मिलनेसे बनी हो और जिसके कुछ सुनिश्चित गुण हों; वह उस स्वभावके अनुसार कार्य करती है और उस स्वभावके अनुसार जो कुछ अनुमान किया जा सकता है वैसे ही परिणाम अनिवार्यतः उत्पन्न करती है। अब, अगर उस चीजमें एक नया तत्त्व किसी भी मुहूर्त्त मिला दिया जाय तो उसकी गठन और उसके स्वभावका सारा गुण ही बदल जायगा। ठीक इसी तरहकी कोई चीज विश्वमें भी घटती रहती है।

यह विश्व असंख्य तत्त्वोंका एक विशाल स्तूप है। ये तत्त्व एक विशेष आकारका निर्माण करते हैं और उस आकारके साथ सामंजस्य रखते हुए अपने-आपमें सुव्यवस्थित होते हैं। परंतु ऐसी एक व्यवस्था ही अंत या चरमावस्था नहीं है; यह स्थिर नहीं है, बल्कि आगेकी ओर बढ़ रही है; इसमें विकासकी क्रिया चल रही है। क्योंकि किसी भी क्षण, एक अन्य प्रकारकी क्रियाके द्वारा, एक या अधिक नये तत्त्व एक निर्दिष्ट कालमें विश्वका निर्माण करनेवाले संपूर्ण पिंडमें प्रविष्ट हो सकते हैं और उससे निश्चय ही सारी भीतरी बनावट बदल जायगी। यह विश्व, मेरे कहनेका तात्पर्य है, यह स्थूल जगत् परात्पर भगवान्‌के एक विशेष स्वरूप या अंश-विभूतिका स्थूलीकरण है। यह स्थूलीकरण क्रमोन्नतशील है, पर अनिवार्य रूपमें किसी निरंतर और नियमित पद्धतिके अनुसार नहीं, बल्कि एक उच्चतर विधानका अनुगमन करते हुए एक सूक्ष्म प्रकार या स्तरकी स्वतंत्रताके साथ यह प्रगति करता है। इस तरह, विश्वकी गठनके अंदर किसी क्षण नये तत्त्व घुस आते हैं और इसके संगठनको बदल देते हैं। जो संगठन अबतक अपने-आपमें पूर्ण था और निश्चित योजनाके अनुसार तथा निश्चित रूपमें आगे बढ़ रहा था एवं अपने-आपको क्रमशः प्रकट कर रहा, था, हठात् अपने-आपको

बदला हुआ पाता है और आंतरिक संबंध भी परिवर्तित हो जाते हैं तथा एक भिन्न स्थितिको प्राप्त हो जाते हैं, और यह बात मनुष्य-को, उसके जागतिक समस्याको देखनेके अपने तरीकेके अनुसार कुछ असंगत या अनिश्चित या आश्चर्यजनक प्रतीत हो सकती है। इस तरह, यहां दो साथ-साथ रहनेवाले तथ्य या अंग हैं: एक तो है नियति जो अपनी पद्धतिमें अपरिवर्तनीय है और जिसमें स्वतंत्रता-की एक परिपूरक गति भी जुड़ी हुई है तथा दूसरा तथ्य है वर्तमान सुनिश्चित समष्टिमें अदृष्टपूर्व तत्त्वोंका सम्मिश्रण।

यह मिश्रण परात्पर चेतनाकी अभीप्साके कारण ही होता है। इस क्रियाके विषयमें आश्चर्य करनेकी कोई वात नहीं। एक अभी-प्सा है जो इस जगत्में कार्य कर रही है, अपनी दृष्टिके सामने एक विशिष्ट लक्ष्य रखकर आगे वढ़ रही है; वह लक्ष्य है पतित और धूमाच्छन्न चेतनाको फिरसे उसकी मूल और स्वाभाविक दिव्य चेतना-की अवस्थामें वापस ले जाना। जव-जव इस अभीप्सु चेतनाके कार्यमें कोई बाधा उपस्थित होती है, उसे किसी नयी रुकावटको जीतना-या रूपांतरित करना होता है तव-तव, प्रत्येक बार, वह एक नयी शक्तिका आवाहन करती है। और यह नयी शक्ति एक प्रकारकी नयी सृष्टि होती है। मनुष्यके अंदर भी पारस्परिक संबंधके विधान-के अनुसार विभिन्न स्तर हैं; प्रत्येक स्तरमें उसके लिये एक पृथक् भवितव्यता है और प्रत्येक स्तर अपनी धारामें स्वतंत्र, निरपेक्ष है। परंतु मनुष्यमें यह क्षमता भी है कि वह, अपनी अभीप्साके द्वारा, अभी वह जिस स्तरमें है उससे ऊंचे एक स्तरके साथ अपना संबंध स्थापित कर सके और उस उच्चतर स्तरकी क्रियाको नीचेकी नियति — अपरिवर्तनशील क्रियाके अंदर उतार ला सके। अतएव हम कह सकते हैं कि प्रत्येक स्तरमें एक समतल नियति — दृढ़

नियमितता है जो अपनी साधारण क्रियामें स्वतंत्र, निरपेक्ष है; परंतु फिर अन्य उच्च स्तरोंसे या उच्चतम स्तरसे सीधे लंबवत् हस्तक्षेप भी होता है और तब निम्नतर नियति पूर्ण रूपसे बदल जाती है। इस तरह प्रत्येक मनुष्य एक साथ ही ऐसी विभिन्न नियतियों — कठोर नियमों — कीं एक समष्टि होता है जो अपनी पद्धतिमें स्वतंत्र होती है, और फिर एक ऐसी पूर्ण स्वतंत्रता भी है जो निम्नतर जगतों-की भवितव्यताके आपाततः कठोर चौखटके अंदर अन्य शक्तियोंको उतारकर हस्तक्षेप कर सकती और इसे बदल सकती है। इसी कारण इस जगत्की चीजोंके विषयमें ऐसी धारणा उत्पन्न होती है कि ये अदृष्टपूर्व हैं, अगणित हैं और आश्चर्यजनक हैं।

इस हस्तक्षेपको तुम भगवत्कृपा कह सकते हो; क्योंकि भागवत कृपाके बिना यह कभी घटित नहीं हो सकता। वस्तु-विषयक एक ऐसी चेतना और एक ऐसी दृष्टि है जहां सब कुछ इस एक मूल-स्रोतपर वापस ले आया जा सकता है; भगवत्कृपा ही केवल है, और कोई चीज नहीं है। वही सब कुछ करती है। परंतु, तुम चूंकि उस ऊंचाईतक नहीं पहुंचे हो, वह चरम अनुभूति तुम्हें नहीं प्राप्त हुई है, इसलिये तुम्हें अपनी व्यक्तिगत सत्ता, व्यक्तिगत अभीप्साका भी विचार करना होगा, उस वस्तुका भी हिसाब रखना होगा जो भगवत्कृपाको पुकारती है और जिसका उत्तर भगवत्कृपा देती है। इन दोनोंकी यहांपर जरूरत है। अंतिम रूपमें ये दोनों एक ही सत्य-को देखनेके दो तरीके हैं। परंतु इन दोनोंकी एक संयुक्त गतिकी धारणा बनाना मनके लिये कठिन है। मन जो कठोर विभेद उत्पन्न करता है उससे समग्र अनुभूतिके नमनीय, सूक्ष्म और पूर्ण सत्यका बहुत कुछ अंश नष्ट हो जाता है।

२

भागवत सत्य —— उसका नाम और रूप

वस्तुओंके हृदय-केंद्रमें विद्यमान भागवत सत्यको लोगोंने नाना प्रकारके नाम दिये हैं, प्रत्येक व्यक्तिने अनुभवके अपने निजी दृष्टि-कोणसे उसे व्यक्त किया है। परंतु सर्वदा वह है एक ही सद्वस्तु। उसे प्राप्त करनेके लाखों रास्ते हैं; परंतु एक बात निश्चित है, तुम उसे अवश्य प्राप्त कर सकते हो, चाहे तुम जिस किसी रास्तेसे क्यों न चलो, चाहे जो कोई रूप तुम उसे क्यों न दो; परिणाम एक ही होता है, अंतिम अनुभूति एक जैसी ही होती है। यदि सबने उस वस्तुको स्पर्श किया हो तो सब सर्वदा उसी एक वस्तुको स्पर्श करते हैं। और उन्होंने उस वस्तुको स्पर्श किया है इसका प्रमाण यह है कि वह चीज सबके लिये एक ही है; यदि वह एक ही चीज नहीं है तब उन्होंने उसे स्पर्श नहीं किया है। तुम अपनी पसंदके मुताबिक चाहे जो नाम उसे दे सकते हो: नाम तो महज एक शब्द है। आखिर शब्दका मूल्य ही क्या है? क्या तुमने कभी ख्याल नहीं किया है कि ऐसे बहुतसे लोग होते हैं जिनसे चाहे तुम जितना भी साफ-साफ क्यों न बोलो पर वे तुम्हारी बात नहीं समझते? फिर ऐसे लोग भी होते हैं जो तुम्हारे केवल दो शब्द मुंहसे निकालते ही तुम्हारी बात समझ जाते हैं। बाहरी रूप — शब्दकी ध्वनि —का एक अर्थ होता है यदि उसके पीछे विचारकी शक्ति विद्यमान हो; विचारकी शक्ति जितनी ही बड़ी होती है, वह उतनी ही अधिक सामर्थ्यशाली, सुनिश्चित और स्पष्ट होती है। लोगोंके उस शक्ति-

को ग्रहण करने तथा उस शक्तिको वहन करनेवाले शब्दको समझनेकी-की संभावना भी उतनी ही अधिक होती है। परंतु बिना सोचे-विचारे ही यदि कोई बोले तो सामान्यतया उसे समझना असंभव ही होता है; तुम्हें ऐसा मालूम होगा मानो वह केवल शोर मचा रहा है। तुमने यह भी ख्याल किया होगा कि जो लोग एक साथ रह चुके हैं और एक-दूसरेके विचार और बातचीतको समझनेके आदी हैं उन्हें अपने व्यवहृत शब्दोंकी कोई व्याख्या करनेकी आवश्यकता नहीं होती या यहांतक कि उन्हें एक-दूसरेकी बात समझनेके लिये अधिक शब्दोंका प्रयोग करनेकी भी जरूरत नहीं होती। उनके मनों-में एक प्रकारका सामंजस्य स्थापित हो चुका होता है, शब्द तो भीतरी संपर्कके लिये महज बहाना होते हैं, और वह संपर्क मस्तिष्कके साथ मस्तिष्कका होता है जो शब्दोंके पीछे छिपा होता है अथवा उनसे पहलेसे ही वहां विद्यमान रहता है। परंतु जब तुम किसी नये आदमीसे मिलते हो तो जिन शब्दोंका वह व्यवहार करता है उन्हें समझनेके लिये अपने-आपको अनुकूल बनाने और व्यवस्थित करनेमें तुम्हें कुछ समय लग सकता है।

वास्तवमें शब्दका अर्थ, शब्दके पीछे विद्यमान विचार ही प्रधान है। जब विचारका शक्तिशालिताके साथ चिंतन किया जाता है तब वह एक प्रकंपन उत्पन्न करता है जिसका शब्द केवल वाहन या मध्यस्थ होता है। सच पूछा जाय तो तुम अपनी विचार-शक्तिको इस हदतक विकसित कर सकते हो कि तुम कम-से-कम शब्दोंके द्वारा या यहांतक कि एकदम बिना शब्दके ही सीधा स्थूल संपर्क स्थापित करनेमें समर्थ हो सको। स्वभावतः ही इसके लिये एकाग्रतकी प्रबल शक्तिकी आवश्यकता होती है। परंतु तुम देखोगे कि शरीररूपी यंत्र केवल एक साधन है जो एक मशीनकी तरह कार्य करता है;

वह एक उपकरण तो है, पर वह सर्वदा महत्त्वपूर्ण या अनिवार्य नहीं है।

जब हम भगवान्‌के विषयमें सचेतन होते हैं तब क्या हम उन्हें सब चीजोंके अंदर किसी विशिष्ट रूपमें देखते हैं?

क्या तुम प्रत्येक और सभी चीजोंमें एक भागवत रूप देखनेकी आशा करते हो? ऐसा हो सकता है। पर इस विषयमें मुझे संदेह है; मेरी धारणा यह है कि ऐसे अनुभवोंमें बहुत बड़ा भाग कल्पनाका होता है। उदाहरणार्थ, प्रत्येक प्राणी या वस्तुमें तुम कृष्ण, ईसा या बुद्धका रूप देख सकते हो। परंतु मेरा कहना यह है कि इस दर्शनके अंदर मानवीय कल्पनाका बहुत-सा अंश घुस आता है। अन्यथा अभी-अभी जो कुछ मैं कह रही थी वह सत्य नहीं होगा। मैंने कहा था कि जो लोग भगवान्‌के विषयमें सचेतन होते हैं, जिन्हें भगवान्‌का संस्पर्श मिलता है, उन सबको, चाहे वे जो कुछ हों, चाहे जिस किसी युग या देशके हों, मूलतः एक ही अनुभव प्राप्त होता है। अगर ऐसा न हो तो हिंदू सदा ही अपने किसी एक देवताको देखेंगे, यूरोपियन अपने किसी देवताको देखेंगे, जापानी तीसरे ही प्रकारकी किसी चीजको देखेंगे और इसी तरह अन्यान्य लोग अन्यान्य चीजें देखेंगे। इसका मतलब है कि प्रत्येक आदमी अपने दर्शनमें अपनी निजी मानसिक रचनाको जोड़ देगा और वह चीज मूल या शुद्ध सद्वस्तु नहीं होगी जो कि सब रूपोंके परे है। मनुष्यको भागवत उपस्थितिका दर्शन हो सकता है, वह दर्शन खूब गहरा हो सकता है, यहांतक कि भगवान्‌के साथ मनुष्यका व्यक्तिगत संबंध भी स्थापित हो सकता है, परंतु यह आवश्यक नहीं कि जिस प्रकारके रूपकी तुम कल्पना करते हो उसी रूपमें या उसी रूपके द्वारा ऐसा हो; यह एक अवर्ण-

नीय वस्तु है, सभी व्याख्याओं या परिभाषाओंके परेकी चीज है, यह केवल उसी मनुष्यकी समझमें आती है जिसे अनुभव प्राप्त हुआ है। हो सकता है कि तुम्हें एकाएक किसी विचित्र अवस्थामें पहुंचा दिया जाय, तुम अपने-आपको भगवान्‌की उपस्थितिमें पाओ जो एक ऐसा रूप लिये हों जिससे तुम परिचित हो, जिसे तुम अपनी शिक्षा-दीक्षा और परंपराके कारण भगवान्‌के साथ जोड़नेके अभ्यासी हो। परंतु जैसा कि मैं कहती हूं, यह अनुभवका चरम सारतत्त्व नहीं है: रूप अंततः अनुभवको सीमित कर देता है, उसकी विश्वव्यापकताको तथा उसकी शक्तिके बहुत बड़े अंशको उससे दूर कर देता है।

प्रतीकात्मक अज्ञान

पूर्ण चेतना (विश्वजननीकी चेतना) की ज्योतिमें भला काले दाग कैसे हो सकते हैं? अंधकार केवल सापेक्षिक चीज है और वह चेतनाकी मात्रा या अवस्थाके ऊपर निर्भर करता है। प्रारंभिक अवस्थामें, निम्नतर और संकीर्णतर क्षेत्रोंमें ज्योति धीमी और अवरुद्ध होती है: वह अंधकारके बहुत बड़े और घने क्षेत्रसे घिरी होती है। जैसे-जैसे चेतना बढ़ती है, यानी अपने-आपको प्रकट करती है, जैसे-जैसे वह ऊपर उठती और फैलती है, वैसे-वैसे अंधकार भी अधिकाधिक हटता जाता है और धीरे-धीरे विलीन हो जाता है। यह चेतना वैयक्तिक नहीं, बल्कि नैर्व्यक्तिक चीज है। दूसरे शब्दोंमें, यह अपने अंदर, विशेषकर पृथ्वीको लिये हुए, समूचे विश्वको धारण करती है। और पृथ्वी एक अंधकारपूर्ण वस्तु है; यह अज्ञान और अचेतनतासे बनी है। ज्योति इसे घेरे रहती है और केवल धीरे-

धीरे ही इसमें प्रविष्ट होती और इसे रूपांतरित करती है। इस तरह भगवती माताकी चेतना प्रतिनिधि-चेतना है; वह उन सभी चीजोंका प्रतिनिधित्व करती है जो अभी अचेतन हैं और गुप्त रूपसे, विना जाने चेतना प्राप्त करनेका प्रयास कर रही हैं। उसके साथ-ही-साथ यह चेतना स्वयं वह ज्योति भी है जो कार्य करती और रूपांतरित करती है। भागवत चेतना मूर्त्तिमान् होकर स्वयं अपने ऊपर कार्य करती है और इस तरह अपने कार्यको ऐसे साकार और मूर्त्त रूप प्रदान करती है जो भिन्न चीजोंके रूपमें दिखायी देते हैं।

रोग और दुर्घटनाएं

अगर शरीर अस्वस्थ हो तो क्या मन भी बीमार पड़ जाता है ?

सच पूछो तो यह आवश्यक नहीं है। मैं तुम लोगोंको बता चुकी हूं कि साधारणतया बीमारियां आती हैं सत्ताके विभिन्न भागोंके बीच संबंध टूट जानेके कारण, एक प्रकारका असामंजस्य स्थापित हो जानेके कारण। बहुत संभव है कि शरीरने प्रगतिकी धाराका अनुसरण न किया हो, वह पीछे रह गया हो जब कि दूसरे अंग, उसके विपरीत, आगे बढ़ गये हों। उस हालतमें समतोलता भंग हो जाती है, सामंजस्य टूट जाता है और उसके कारण बीमारी पैदा हो जाती है, मेरा मतलब है, शरीरमें बीमारी पैदा हो जाती है, क्योंकि मन और प्राण उस समय भी स्वस्थ रह सकते हैं। ऐसे बहुतसे लोग हैं जो वर्षों बीमार रहे, भीषण और असाध्य रोगोंसे पीड़ित रहे, और फिर भी उन्होंने अपनी मानसिक शक्तिको अद्भुत रूपसे स्वच्छ और सक्रिय बनाये रखा और उस क्षेत्रमें उन्नति करना

जारी रखा। फ्रांसमें एक कवि थे, वह बहुत अच्छ कवि थे, उनका नाम था स्यूली प्रूदोम (Sully prudhomme)। वह सांघातिक रूपसे बीमार थे और उन बीमारीके दिनोंमें ही उन्होंने अपनी सबसे सुन्दर कविताओंकी रचना की। जब कि उनका शरीर धीरे-धीरे क्षीण होता जाता था तब भी वह बराबर बहुत प्रसन्न रहते थे, अपनी रसिकतासे प्रत्येक आदमीका मन हर लेते, प्रत्येक आदमीके सामने हंसते हुए और प्रफुल्ल रहते। तुम्हें याद होगा कि महान् चौदहवें लुई (Louis XIV) उस समय भी मजाक किया करते और हंसते रहते जब कि, उनके जीवनके अंतिम दिनोंमें उनके डाक्टर और सर्जन उनके शरीरको काटते जाते थे और जोंकोंको सौंपते जाते थे। यह बात व्यक्ति-व्यक्तिपर निर्भर है। क्योंकि दूसरे प्रकारके ऐसे लोग भी हैं जो जरा-सी भी शारीरिक अस्वस्थता हुई कि सिरसे पैरतक एकदम घबड़ा जाते हैं। प्रत्येक व्यक्तिके अंदर विभिन्न तत्त्वोंका मिश्रण अपने निजी ढंगका होता है।

निस्संदेह, मन और शरीरके बीच एक संबंध है, अत्यंत घना संबंध है। अधिकांश मनुष्योंमें मन ही शरीरको अस्वस्थ बनाता है, कम-से-कम बीमारीका यह एक अत्यंत प्रमुख कारण होता है। मैं कह चुकी हूं कि कुछ ऐसे लोग होते हैं जो शरीरके रुग्ण होनेपर भी अपने मनको स्वच्छ बनाये रखते हैं। परंतु जब मन अस्वस्थ होता है या अपनी समतोलता खो बैठता है तब शरीरको स्वस्थ बनाये रखना बड़ा कठिन होता है और विरले लोग ही बनाये रखते हैं। ऐसा करना असंभव तो नहीं है, पर अत्यंत विरल है। क्योंकि मैं तुम्हें बतला चुकी हूं कि मन ही शरीरका मालिक है, शरीर उसका आज्ञाकारी और विनम्र सेवक है। दुर्भाग्यवश लोग साधारणतया यह नहीं जानते कि उन्हें अपने मनका व्यवहार कैसे करना

चाहिये, और इतना ही नहीं, वल्कि उसका वुरा व्यवहार करते हैं और जितना वुरा व्यवहार करना संभव होता है उतना वुरा व्यवहार करते हैं। मनमें रचना करने और शरीरपर सीधे क्रिया करनेकी वहुत वड़ी शक्ति है। ठीक इसी शक्तिका उपयोग लोग शरीरको अस्वस्थ वनानेमें करते हैं। जैसे ही कोई ऐसी वात होती है जो अपने अनुकूल नहीं पड़ती, वैसे ही मन उसके विषयमें परेशान होना आरंभ कर देता है, आनेवाली विपत्तियोंकी रचनाएं करने लगता है, भविष्यमें आनेवाले नाना प्रकारके काल्पनिक खतरोंकी वात सोचने लगता है। अव, यदि मनको इस प्रकार खूनके प्यासे पागलकी तरह चाहे जिसपर आक्रमण करके संहार न करने दिया जाय, वल्कि उसके वदले उसी शक्तिको कहीं अधिक अच्छे उद्देश्यमें प्रयुक्त किया जाय, यदि अच्छी रचनाएं की जायं, अर्थात्, यदि शरीरमें आत्मविश्वास उत्पन्न किया जाय, उससे कहा जाय कि इसमें घवड़ानेकी कोई बात नहीं, यह एक क्षणिक कष्ट है आदि-आदि, तो ऐसी हालतमें शरीर ग्रहणशीलताकी समुचित स्थितिमें आ जायगा और वीमारी जैसे आयी थी वैसे ही चुपचाप निकल जायगी। इसी तरह मनको शिक्षा देनी चाहिये कि वह शरीरको अच्छे सुझाव दे और उसपर कीचड़ न फेंके। यदि तुम उचित ढंगसे ऐसा करो तो उससे अद्‌भुत परिणाम उत्पन्न होंगे।

जव कोई दुर्घटना होती है तब उसमें एक विकट मुहूर्त्त आता है। उदाहरणार्थ, तुम फिसलते हो और तुम गिर पड़ते हो। अव, जिस क्षण तुम फिसलते हो और जिस क्षण तुम गिरते हो, इन दोनोंके बीच ठीक सेकंडका एक क्षुद्रांश समय आता है जब तुम्हें मानो चुनाव करनेका मौका दिया जाता है। अव, या तो कुछ भी नहीं घट सकता अथवा कोई वहुत गंभीर बात घट सकती है। वस,

चुनाव करनेके लिये तुम्हारी चेतना पूर्ण रूपसे जागृत होनी चाहिये और तुम्हारी सत्ताका संपर्क निरंतर चैत्य पुरुषके साथ बना रहना चाहिये। संपर्क पैदा करनेके लिये वहां तनिक भी समय नहीं है, पहलेसे ही वहां संपर्क बना रहना चाहिये। सो, ठीक फिसलने और गिरनेके बीच, यदि तुम्हारे अंदर मन और चैत्य पुरुषका संगठन पर्याप्त मात्रामें हो चुका हो तो, तुम एकदम अछूते निकल आओगे। यदि, इसके विपरीत, शरीर यह सोचने लगे, जैसी कि उसकी आदत है, "ओह! मैं फिसल गया" और भयभीत हो जाय — इसमें, जैसा कि मैंने कहा है, सेकंडका एक हिस्सा, उससे भी कम समय लगता है — तो दुर्घटना हो जायगी! तुममें दुर्घटनाको रोकनेकी क्षमता है, तुम्हें क्षणभरमें चुनाव करनेका मौका दिया जाता है। परंतु उसके लिये तुम्हें पूरा-पूरा जाग्रत्, पूर्ण रूपसे सचेतन होना सीखना होगा। जब तुम उस अवस्थामें होते हो तब तुम दुर्घटनाको रोक सकते हो, किसी रोगको अपने अंदर आनेसे रोक सकते हो। परंतु यह ठीक सेकंडके भी एक क्षुद्रांशका मामला होता है और तुम्हें उसे खोना नहीं चाहिये।

और, इसके अतिरिक्त, एक और भी मुहूर्त्त आता है। जब तुम गिर चुके हो और आहत हो चुके हो तब भी एक अवसर तुम्हारे लिये खुला होता है कि आया वह दुर्घटना अच्छा रूप ले या बुरा, आया वह ठीक एक दुर्घटना ही होकर रुक जाय या वास्तवमें कोई गंभीर या यथासंभव अधिकसे अधिक गंभीर कोई बात बन जाय। क्या तुम लोगोंने इस बातपर कभी ध्यान दिया है कि कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके जीवनमें दुर्घटनाका कोई भी अवसर खाली जाता हुआ नहीं प्रतीत होता? जब कभी दुर्घटनाकी संभावना होती है तभी वह घटित हो जाती है। और दुर्घटना कभी हलकी नहीं

होती, वह गंभीर होनेकी ही प्रवृत्ति रखती है और प्रायः ही बहुत गंभीर हो जाती है। लोग कहते हैं, कितना दुर्भाग्यशाली व्यक्ति है! संयोग कभी उसके पक्षमें नहीं होता इत्यादि-इत्यादि! परंतु यह सब महज एक अज्ञान है। प्रत्येक चीज पूर्णतः चेतनाकी क्रिया-पर निर्भर है। मैं इस बातके चाहे जितने भी उदाहरण दे सकती हूं और उतने ही आश्चर्यजनक उदाहरण दे सकती हूं। ऐसे लोग हैं जो मर ही गये होते पर दुर्घटनामेंसे जैसे-के-तैसे निकल आये। दूसरे कुछ ऐसे लोग हैं जिनके लिये आरंभमें जो बात बिलकुल हानि-कारक न होती वही बुरीसे बुरी हो जाती है और अंतमें, शायद, घातक सिद्ध होती है।

परंतु तुम्हें जानना चाहिये कि यह कोई विचारकी, साधारण विचार-शक्तिकी क्रिया नहीं है। एक आदमीमें उतना ही अच्छा विचार रह सकता है जितना कि दूसरेमें। यह साराका सारा निर्भर है चुनावके उस मुहूर्त्तपर। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो जानते हैं कि ठीक ढंगसे और ठीक समयपर कैसे प्रतिक्रिया की जाती है। बस, उनका स्वभाव ही प्रधान चीज है। ऐसे लोगोंमें जाग्रत् और सतर्क चेतना होती है; वे निद्रित नहीं होते, वे अपने अंदर निरंतर चौकसी भी नहीं रखते। और ठीक मुहूर्त्तमें, हां, एकदम ठीक समयपर ही वे सहायताकी पुकार करते हैं, भागवत शक्तिका आह्वान करते हैं और खतरा टल जाता है। दूसरी ओर, जब कभी कोई बात प्रतिकूल हो रही हो, सत्तामें कोई असामंजस्य हो गया हो और तब यदि तुम्हारी चेतनामें भय, भावी अशुभकी संभावना या पराजयकी भावना भर जाय तो तुम नष्ट ही हो जाओगे।

वास्तवमें, जैसा कि मैंने कहा है, मन वह चीज नहीं है जो निर्णय करती है। वह चीज तो है एक आंतरिक भाव, सत्ताकी

एक अवस्था, यथार्थ चेतना जो समुचित ढंगसे प्रतिक्रिया करती है।
इसका प्रभाव वहुत दूरतक जाता है। तुम नहीं जानते कि यह कैसी शक्ति है। यदि यह शक्ति एक क्षणके लिये भी विद्यमान रहे तो यह आश्चर्यजनक कार्य कर सकती है। केवल इसे पहलेसे वहां रहना चाहिये, तुम्हें पहलेसे ही एक जाग्रत् अवस्थामें रहना चाहिये, तुम उसी क्षण उसे नहीं ला सकते, तुम्हारे पास इसके लिये समय ही नहीं होता।

फिर तुम यह कह सकते हो कि वास्तवमें भगवत्कृपा ही रक्षा करती है। पर क्या तुम मुझे समझा सकते हो कि वह कैसे कार्य करती है? निःसंदेह यह पता लगाना वड़ा आनंदयायी होगा कि किसे यथार्थमें जागृत चेतना थी, श्रद्धा-विश्वास और आंतरिक निर्भरता थी, किसने सहायताके लिये पुकारा था और किसमें वह चीज थी जिसने अंदर आनेवाली चीजका सहज भावसे — और यहां-तक कि एक प्रकारसे अचेतन रूपमें — प्रत्युत्तर दिया था। मानव-वुद्धि एक आपेक्षिक वस्तु है और उसमें शक्तिकी विभिन्न मात्राएं हैं। साधारणतया यह विषमताओं और विपरीतताओंके द्वारा वस्तुओंको समझती है। वह सत्यको अखंड रूपमें नहीं समझती। उदाहरणार्थ, मेरे पास सैंकड़ों चिट्ठियां आयी हैं जिनमें मुझे धन्य-वाद दिया गया है, क्योंकि वे लोग खतरोंसे बच गये। परंतु मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी एक भी चिट्ठी पायी हो जिसमें मुझे इसलिये धन्यवाद दिया गया हो कि सब कुछ स्वाभाविक ढंगसे हो गया और कुछ भी अन्यथा घटित नहीं हुआ। मनुष्य कृपाशक्तिकी क्रियाको तभी अनुभव करते हैं जब निराशाका वातावरण होता है और कोई खतरा होता है, जब दुर्घटनाका होना आरंभ हो चुकता है, जब दुर्घटना होने जा रही होती है और वे उससे बच जाते हैं।

जब वे सुरक्षित रूपमें खतरेसे बाहर निकल आते हैं केवल तभी वे रक्षा करनेवाली शक्तिकी ओर ध्यान देते हैं। अन्यथा उसका विचार भी उनके मनमें नहीं आता। अगर वे अपनी समुद्रयात्राको बिना किसी दुर्घटनाके पूरा कर लें तो वे यह नहीं सोचेंगे कि इसमें भगवत्कृपाकी कोई क्रिया विद्यमान थी। इसे वे लोग स्वाभाविक गतिसे होनेवाली एक बात समझते हैं। परंतु यह बात ठीक ऐसी घटित हुई इसी कारण यह कहा जा सकता है कि यहां एक उच्च प्रकारकी कृपाशक्तिने कार्य किया होगा और मनुष्यकी चेतना तथा जिस उच्चतर शक्तिका वह उत्तर देती है उसके बीच पहलेसे ही कोई गभीर समस्वरता विद्यमान रही होगी। दुर्घटनाकी संभावनाका अर्थ ही है कि जिस असामंजस्यकी बात मैं कह चुकी हूं उसका प्रारंभ हो चुका है। परंतु अवस्था उस समय बहुत जटिल हो जाती है जब कि सामूहिक दुर्घटनाका प्रसंग होता है। यहांपर परिणाम निर्भर करता है उसमें ग्रस्त व्यक्तियोंके वातावरणपर। सामूहिक दुर्घटना-में विद्यमान जनसमूहके अंदर ये दो बातें जिस मात्रामें होती हैं उसी-के अनुसार उस दुर्घटनाका आकार और प्रकार निश्चित होता है।

मैं इस विषयमें तुम्हें एक सच्ची कहानी सुनाऊंगी। एक विमानचालक था जो प्रथम महायुद्धके समय अपने साथियोंमें बड़ा निपुण समझा जाता था और लोग उसे 'आस' (Ace) — शत्रुके दस हवाई जहाज मार गिरानेवाला — कहा करते थे। वह एक असाधारण चालक था और कितनी ही विजयें ले आनेवाला वीर योद्धा था। उसे कभी भी कुछ नहीं हुआ। परंतु उसके जीवनके अंतिम भागमें एक घटना — एक व्यक्तिगत दुःखांत घटना घटी और एकाएक उसे ऐसा अनुभव हुआ कि कोई बात उसके जीवनमें घटित होने जा रही है; संभवतः एक दुर्घटना होगी और उसका सर्वनाश

हो जायगा। वह युद्धसे वापस आ गया था पर अभी सेनामें ही था। उसे इच्छा हुई कि वह दक्षिण अफ्रिकातक, फ्रांससे एकदम सीधे दक्षिण अफ्रिकातक एक उड़ान ले। वह फ्रांससे रवाना हुआ और जहांतक मुझे याद है, उसने मैडागास्कर (Madagascar) तक जाकर वहांसे फिर फ्रांस लौट आना चाहा। उन दिनों मेरे भाई कांगो (Congo) के गवर्नर थे और उन्हें अपने कार्यपर यथा-संभव शीघ्र जानेकी जरूरत थी। उन्होंने उस विमानचालकसे उसके जहाजमें अपने लिये एक जगह मांगी। वह सामान्यतया यात्रियोंके लिये व्यवहृत कोई साधारण विमान नहीं था, बल्कि वह उन विमानोंमेंसे एक था जिन्हें परीक्षणके लिये काममें लाया जाता था और जिनके द्वारा यह दिखाया जाता था कि उन मशीनोंमें कितनी क्षमता है और उनके चालक कितने निपुण हैं। बहुतसे लोगोंने मेरे भाईको समझानेकी कोशिश की कि वह यात्रा न करें और उनसे कहा कि इस तरहकी दुःसाहसिक यात्राएं बराबर ही खतरनाक होती हैं। परंतु मेरे भाईने खतरेका कोई ख्याल नहीं किया। यात्रामें खतरनाक कोई घटना नहीं हुई। केवल सहाराके बीचमें एक मामूली-सी दिक्कत आयी जो सहज ही पार कर ली गयी। विमान-ने सुरक्षित रूपमें यात्रा पूरी की और मेरे भाईको कांगोमें उनके स्थानपर पहुंचा दिया। विमान फिर मैडागास्करकी ओर आगे बढ़ा जहां कि, मैं कह चुकी हूं कि, उसे जाना था। मैडागास्कर पहुंचने-के बाद वह चालक अब वापस लौटा और उसने अपनी आधी ही यात्रा पूरी की कि उसका विमान गिर पड़ा और वह तुरत मारा गया। अब मैं तुम्हें समझाऊंगी कि वास्तवमें क्या बात हुई। जो कुछ हुआ वह तो होनेवाला ही था, वह पहलेसे निर्धारित किया हुआ एक निर्णय था। मेरे भाईको अपने भाग्यपर अटूट विश्वास था,

उन्हें पूरा निश्चय था कि कोई भी चीज उन्हें स्पर्श नहीं करेगी। परंतु दूसरेकी चेतना, उसके विपरीत, संदेह और भावी आशंकासे भरपूर थी। अतएव दो वातावरणोंके मिश्रणके कारण यह हुआ कि प्रथम प्रसंगमें दुर्घटनाको रोका तो नहीं जा सका पर वह सांघातिक परिणामपर पहुंचनेसे पहले ही रुक गयी। परंतु जब मेरे भाईका भाग्य अब मशीनके साथ नहीं रहा — सीजरके भाग्य-की तरह जिसने नाविकको तूफानके बीच सुरक्षित रूपसे नदीको पार करने दिया — तब संरक्षण भी हट गया और विमानचालकको अपने दुर्भाग्यके पूरे तूफानमें नष्ट हो जाना पड़ा। मैं इसी प्रकारकी एक दूसरी कहानी सुना सकती हूं। वह एक जहाजकी कहानी है। दो व्यक्ति थे — पति और पत्नी। वे हवाई जहाजसे हिंद-चीन (Indo-China) गये। उस विमानमें एक दुर्घटना, बहुत बड़ी दुर्घटना हो गयी। सब लोग मर गये, केवल ये ही दो व्यक्ति बच गये। अब उन्हें फ्रांस वापस आना था। इस बार उन्हें विमानसे यात्रा करनेकी इच्छा नहीं हुई, उसका उन्हें अनुभव हो चुका था। अतएव उन्होंने एक जलयान अर्थात् एक बहुत बड़ा जहाज पकड़ा और उन्होंने समझा कि यह बिलकुल निरापद है। अब पूर्ण रूपसे अप्रत्याशित, एकदम असाधारण एक घटना घटी। लाल समुद्रके बीचमें, दिन-दहाड़े, जहाज एक चट्टानसे टकरा गया और डूब गया— ऐसी बात हो गयी जो शायद लाखों प्रसंगोंमेंसे एक बार भी नहीं घटित होती। सभी यात्री डूब गये और, फिर कहना ही होगा कि आश्चर्यजनक रूपसे बस यही जोड़ा बच निकला। इस तरहके बहुतसे लोग होते हैं, वे अपने साथ संकट लिये फिरते हैं, पर वह] संकट दूसरोंके लिये होता है, वे स्वयं किसी तरह बच निकलते हैं।

जब तुम साधारण ढंगसे इस चीजको देखते हो तब यह बात

तुम्हें दिखायी नहीं देती। परंतु वह तथ्य वहां मौजूद है। तुम्हें अपने संग-साथके विषयमें बहुत सावधान रहना चाहिये। दुर्भाग्यपूर्ण संग-साथ तुम्हारे लिये सर्वनाशी सिद्ध हो सकता है। दूसरोंका 'कर्म' तुम्हारे ऊपर आ सकता है यदि तुम्हें आंतर ज्ञान, आंतर दृष्टि और आवश्यक शक्ति न प्राप्त हो। यदि तुम किसी आदमीके इर्द-गिर्द काले भंवर जैसी चीज देखो तो चाहे जो भी हानि हो उससे अलग रहो। इन सब बातोंका तात्पर्य यह है कि चीजोंको केवल ऊपर-ही-ऊपर देखनेकी अपेक्षा कुछ अधिक गहराईमें जाकर देखना बहुत लाभदायी होता है।

संसारकी बुराइयोंका प्रश्न

यह जगत्, यह भौतिक जगत् जैसा है इसे क्या भगवान्ने ही रचा है? हां और नहीं भी, 'हां' की अपेक्षा 'नहीं' ही अधिक। क्योंकि सीधे उन्होंने ही इसकी रचना नहीं की है। वास्तवमें इस जगत् और भगवान्के वीच वहुतसे सृजनकर्ता, या यों कहें कि निर्माथिक, रूपनिर्माता हो गये हैं जिन्होंने सृष्टिके कार्यमें हाथ बंटाया है। वे रूपनिर्माता कौन हैं? उन्हें नाना प्रकारके नाम दिये गये हैं। साधारणतया सृष्टि एक क्रमपरंपराके सिद्धांतका अनुसरण करती है। इसकी रचना क्रमशः, सीढ़ी-दर-सीढ़ी होती है, एकके वाद एक जगत्में-से जगत् निकलते जाते हैं। प्रत्येक जगत् सत्ताका एक विशिष्ट स्तर, चेतनाका एक विशेष प्रकार होता है। प्रत्येक स्तरमें ही निवास करती हैं एक प्रकारकी सत्ताएं, व्यष्टिभावापन्न और साकार मूर्त्तियां और इनमेंसे प्रत्येकने ही अपने इर्दगिर्द एक जगत्की सृष्टि की है या पृथ्वीपर कुछ विशेष प्रकारों या जातियोंकी सृष्टि करनेमें

सहायता दी है। इन स्रष्टाओं या निर्माताओंमेंसे सबसे अंतिम हैं प्राणलोकके स्रष्टा। सबसे ऊपर हैं उस लोकके स्रष्टा जिसे श्रीअरविंद-ने नाम दिया है अधिमानस (Overmind)। इसी लोकके स्रष्टाओं-ने पार्थिव प्राणियों और वस्तुओंकी सृष्टि की थी, अर्थात् उन्हें प्रथम रूप प्रदान किया था। उन्होंने अपनी अंशविभूतियोंको उत्पन्न किया और फिर इन अंशविभूतियोंने अपनी अंशविभूतियां पैदा कीं और ऐसे ही क्रमशः सृष्टि-कार्य बढ़ता गया। इस तरह हम देखते हैं कि भागवत संकल्पने सीधे जड़-तत्त्वपर कार्य नहीं किया और जगत्को वह रूप नहीं प्रदान किया जो दिया जा सकता था या दिया जाना चाहिये था। यहां बहुतसे स्तर और लोक हैं, श्रेणीबद्ध मध्यवर्ती सत्ताएं हैं जिनके द्वारा दिव्य संकल्पको कार्य करना पड़ा। मैंने अधिमानसिक और प्राणमय लोककी चर्चा की ही है, इन दोनोंके बीच मानसिक लोक भी हैं। वहां मानसिक सत्ताएं हैं और उन्होंने भी सृष्टि की है, कुछ सत्ताओंको आकार दिया है जिन्होंने पथ्वीपर शरीर ग्रहण किया है।

अतएव एक परंपरागत मत है जिसका कहना है कि कीड़े-मकोड़ों-का जो जगत् है वह प्राणमय जगत्के स्रष्टाओंसे उद्भूत हुआ है। यही कारण है कि जब तुम कीड़ोंको अनुवीक्षण-यंत्रके द्वारा देखते हो तो वे ऐसा आकार ग्रहण कर लेते हैं जो एकदम पैशाचिक होता है। पर्देपर बृहदाकार धारण कर वे इतने भयावह हो जाते हैं कि वे ठीक एक राक्षस-जैसा दिखायी देते हैं। वे अत्यंत छोटे आकार-वाले दैत्य ही हैं। इसीलिये यह कहा जाता है कि प्राणमय लोक-की सत्ताओंने अपना मन बहलाना चाहा और तमाशेके रूपमें इन दुःसह प्राणियोंकी सृष्टि की जो मानवजीवनको दुःखी बनाते हैं।

निश्चय ही तुम पूछ सकते हो कि स्वयं ये मध्यवर्त्ती सत्ताएं

कैसे उत्पन्न हो गयीं, क्या वे भगवान्‌से नहीं आयीं ? मध्यवर्त्ती सत्ताएं क्रमशः एकके बाद एक उच्चतर मध्यवर्त्ती सत्ताओंसे उत्पन्न हुईं और अंतमें यह शृंखला परात्पर भगवान्‌तक जा पहुंचती है। मूलतः, कहनेका मतलब, यदि तुम पीछे मूल स्रोततक जाओ तो निःसंदेह वहां केवल भगवान् ही मिलेंगे। तब भला यह विकृति कैसे उद्भूत हो गयी ? एक बार मैंने तुम्हें बतलाया था कि यदि तुम भगवान्‌के साथ युक्त होकर सीधे उन्हींके प्रभावके अधीन न रहो, यदि तुम सृष्टि या विस्तारकी गतिधाराका अनुसरण ठीक उसी रूपमें न कर सको जैसा कि भगवान् इसे चाहते हैं तो भगवान्‌के साथ इस प्रकार संस्पर्श भंग होना ही सबसे बड़ी बुराई, विभाजन, को उत्पन्न करनेके लिये पर्याप्त है। यहांतक कि अत्यंत ज्योतिर्मय, अत्यंत शक्तिशाली सत्ताएं भी भागवत गतिधाराको मानकर चलनेके बदले अपनी निजी गति-धाराका अनुसरण करनेका निश्चय कर सकती हैं। वे अपने-आपमें अद्भुत सत्ताएं हो सकती हैं, और यदि मानव-प्राणी उन्हें देख लें तो उन्हें साक्षात् भगवान् ही समझेंगे, फिर भी वे, अपनी निजी इच्छाका अनुसरण करने और विश्वके साथ सामंजस्य रखकर कार्य न करनेके कारण बहुत बड़ी अस्तव्यस्तताओंका कारण बन सकती हैं। संसारमें ऐसा कुछ भी नहीं है जो भगवान् न हो, केवल यहां अस्तव्यस्तता उत्पन्न हो जाती है, अर्थात् प्रत्येक चीज अपने समुचित स्थानपर नहीं रहती। समस्या बस यह है कि उसका उपाय करना होगा।

इस प्रश्नके विषयमें कि यह स्खलन क्यों हुआ, आखिर यह बुराई क्यों उत्पन्न हुई, मैं कह सकती हूं कि सबसे पहले, जिसे तुम बुराई कहते हो वह कोई ऐसी चीज हो सकती है जो तुम्हें सुविधा-जनक नहीं प्रतीत होती, परंतु समूची विश्व-व्यवस्थाकी दृष्टिसे वह अत्यंत सुविधाजनक हो सकती है। दूसरे, ऐसा भी कहा जा सकता

है कि संभवतः आरंभमें वह चीज महज एक दुर्घटना-जैसी हुई होगी। और हमारा संबंध उतना इस बातसे नहीं है कि वह क्यों हुई अथवा यहांतक कि वह कैसे हुई, बल्कि इस बातसे है कि जो बुराई है उसके लिये कोई दवा ढूंढ़ निकाली जाय। परंतु हम यदि दार्शनिक दृष्टि-से देखें तो हम देखेंगे कि जिस जगत्‌में हम रहते हैं वह स्पष्ट ही बहुतसी (वास्तव और संभव) गतियोंमेंसे एक है, वह अपने निजी विधानका अनुसरण करता है जो अन्य दूसरी जगहोंमें भी ठीक एक जैसा नहीं है, जिस सिद्धांतके अनुसार यह जगत् रचा गया है वह यदि स्वतंत्र इच्छाका सिद्धांत हो तो फिर अस्तव्यस्त गतिधाराको तुम घटित होनेसे तबतक नहीं रोक सकते जबतक कि कोई ज्ञान नहीं आ जाता और उस इच्छाको आलोकित नहीं कर देता। अगर कोई इच्छा करनेके लिये स्वतंत्र हो तो वह गलत चीजकी भी इच्छा कर सकता है, यह कोई आवश्यक नहीं कि वह यथार्थ चीजकी ही इच्छा करे, क्योंकि यह यदि पहलेसे ही निश्चित कर दिया गया हो कि इच्छा बराबर अच्छी ही होनी चाहिये और उसे यथार्थ दिशाका ही अनुसरण करना चाहिये तो फिर वह इच्छा कभी स्वतंत्र नहीं होगी।

परंतु सच पूछा जाय तो इस प्रकार इस प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता। यह एक ऐसी समस्या है जिसके मानसिक उत्तर—यहांतक कि जिसके मानसिक निरूपण भी — महज इस समस्याके विस्तारको घटानेका ही काम करते हैं; स्वयं यह प्रश्न ही इस समस्याको घटाकर एक कम या अधिक मौलिक सूत्रमें परिणत कर देता है जो केवल अस्पष्टतः, बाह्यतः तथा अपूर्णतः ही वस्तुओंके सत्यसे मिलता-जुलता है।

इस बातको समझनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये तुम्हें 'बनना' होगा। अगर तुम विश्वके संबंधमें यह समझना चाहो कि यह क्यों

और कैसे हुआ तो तुम्हें अपने-आपको विश्वके साथ एकात्म कर देना होगा। और ऐसा करना आसान नहीं है।

वास्तवमें स्वयं यह प्रश्न ही गलत है। यह लड़कपन है। यह प्रश्न ऐसी बातें पहलेसे ही स्वीकार करके चलता हैं जो स्वयं विवादास्पद हैं। सृष्टिके विषयमें कुछ ऐसी भावनाएं हैं जो प्रायः सब देशोंमें प्रचलित हैं, लगभग स्थायी भावसे ही मानव-विचारद्वारा युग-युगमें स्वीकृत हुई हैं। वे आश्चर्यजनक सरलतासे भरी हुई हैं। कहा जाता है कि एक जगत् तो यहां है और इससे ऊपर कहीं एक व्यक्ति है जिसे ईश्वर कहते हैं। इस व्यक्तिने एक दिन एक प्रकारकी चीज, एक दृश्य आकारकी सृष्टि करनेका विचार किया। उसीके फलस्वरूप उत्पन्न हुआ यह जगत्। प्रत्यक्ष रूपमें हम उसके कार्यमें बहुतसी भूलें देखते हैं। हम सिद्धांत निकालते हैं कि संभवतः स्रष्टा एक शुभेच्छासंपन्न दयालु व्यक्ति तो है पर सर्वशक्तिमान् नहीं है; कोई दूसरी वस्तु या सत्ता भी है जो उसका विरोध करती है। अथवा संभवतः वह सर्वशक्तिमान् तो है पर तब उसे हृदय नहीं है और वह साक्षात् क्रूरता ही होगा — उसकी सृष्टिकी अवस्था देखनेपर ऐसा ही प्रतीत होता है क्योंकि वह सृष्टि शोक और क्लेश और संतापकी ही कहानी है। ऐसी कोई भी भावना, मेरी समझमें, स्वयं भोलापन ही है, बाल-मस्तिष्कका भोलापन है। जब कोई आदमी बर्तन बनानेवाले कुम्हारके रूपमें जगत्के स्रष्टा भगवान्की चर्चा करता है तब वह एक मनुष्यके रूपमें, केवल एक बड़े आकार-प्रकारमें, भगवान्की कल्पना करता है। सच पूछा जाय तो भगवान्ने मनुष्य-को अपनी आकृतिके अनुरूप नहीं रचा है, बल्कि मनुष्यने ही अपनी आकृतिके अनुरूप भगवान्की रचना की है।

मेरी दृष्टिमें प्रश्न गलत रूपमें रखा गया है। प्रश्नका स्वरूप

ही यह वतलाता है कि भगवान् और सृष्टिके विषयमें कुछ धारणाएं पहलेसे ही वना ली गयी हैं। तुम्हारी मौलिक मान्यताएं या स्वयं-सिद्धियां ही अपने-आपमें दोषपूर्ण हैं।

जगत् और उसका स्रष्टा अलग-अलग चीजें नहीं हैं, वे दोनों एक हैं और अपने मूलमें एकरूप हैं। स्वयं भगवान् ही देश (और काल) में विस्तारित हुए हैं और विश्व कहलाते हैं। उसी तरह विश्व भी एक-न-एक रूपमें भगवान् ही है। तुम घड़ी वनानेवाले और उसकी घड़ीके समान एकको सिरजनहार और दूसरेको उसका कार्य कहकर इन दोनोंको विभक्त नहीं कर सकते। तुम भगवान्-संवंधी अपनी भावनाको उनके ऊपर लाद देते हो और पूछते हो कि उन्होंने ऐसे गंदे संसारकी रचना क्यों की। यदि भगवान्को उत्तर देना होता तो वह कहते, "मैंने नहीं, तुमने रचना की है। फिरसे तुम मेरे जैसा बन जाओ तो तुम अभी जैसा अनुभव करते और देखते हो वैसा न तो अनुभव करोगे और न देखोगे। तुम स्वयं 'तुम' नहीं हो, अपने सत्य स्वरूपको नहीं प्राप्त हुए हो, इसीलिये तुम्हारा यह प्रश्न और तुम्हारी यह समस्या है!" निःसंदेह जब तुम अपनी चेतना-को भागवत चेतनाके साथ युक्त कर देते हो तब फिर कोई समस्या नहीं रह जाती। उस समय प्रत्येक बात ही स्वाभाविक और सीधी-सादी, ठीक-ठाक और उसे जैसी होनी चाहिये वैसी ही मालूम होती हैं। जव तुम अपने मूलसे अपनेको काट देते हो और उनसे बाहर, उनके सामने और उनके विरुद्ध खड़े हो जाते हो, केवल तभी सारी कठिनाई आरंभ होती है। अवश्य ही तुम पूछ सकते हो कि इसका क्या कारण है कि भगवान्ने स्वयं अपने ही एक अंशको अलग जाने दिया है और उसने अपनेको अलग करके यह सव अस्तव्यस्तता उत्पन्न कर दी है? भगवान्की ओरसे मैं तुम्हें इसका उत्तर दूंगी, "अगर तुम जानना चाहते हो तो अच्छा यह है कि तुम अपने-आपको भगवान्के

साथ युक्त कर लो, क्योंकि उन्होंने ऐसा क्यों किया है उसे जाननेका एकमात्र पथ यही है। अपने मनके द्वारा उनसे प्रश्न पूछकर तुम उनके उत्तर नहीं पा सकते। मन जान ही नहीं सकता। और मैं फिर दुहराती हूं कि जब तुम इस तादात्म्यको प्राप्त कर लेते हो तब सब समस्याएं हल हो जाती हैं। हम यह व्याख्या दे सकते हैं कि हमारे अंदर जो यह भाव उत्पन्न होता है कि संसारकी चीजें बिलकुल ठीक नहीं हैं, इन्हें अन्य प्रकारका होना चाहिये था, यह निश्चित रूपसे इस तथ्यके कारण आता है कि एक भागवत संकल्प-शक्ति है जो अपने-आपको निरंतर थोड़ा-थोड़ा करके विस्तारित कर रही है और जो चीजें थीं और हैं उन्हें उन चीजोंके लिये स्थान खाली करना होगा जो आगे होंगी और जैसा वे अबतक रही हैं उससे अधिकाधिक अच्छी होती जायंगी। जो जगत् कल अच्छा था वह फिर कल वैसा नहीं रहेगा। यह विश्व किसी दूसरे युगमें भले ही एकदम सुसमंजस प्रतीत हुआ हो पर आजकल यह एकदम अव्यवस्थित प्रतीत होता है: इसका कारण यह है कि हम एक और भी अच्छे विश्वकी संभावना देख रहे हैं। विश्वको जैसा होना चाहिये वैसा ही यदि हम उसे पायें तो हमें जो कुछ करना है उसे नहीं करेंगे, हम उसे और अच्छा बनानेके लिये प्रयास नहीं करेंगे। ठीक उसी तरह, हम भगवान्‌के विषयमें बहुत मानुषी ढंगसे कल्पना करेंगे; क्योंकि हम स्वयं अपने अंदर ही कैद रहते हैं, अपनी इस चेतनामें बंद रहते हैं जो अनंत विशालताके अंदर बालूके एक कणके समान है। क्या तुम अनंत विशालताको समझना चाहते हो? यह संभव नहीं। यह केवल एक ही शर्त्तपर संभव है; विशालताके साथ एक हो जाओ। पानीकी बूंद भला यह कैसे पूछ सकती है कि समुद्र कैसा है: उसे तो बस समुद्रके अंदर अपनेको खो देना होगा।

जगत्की कुरूपता

जगत्की प्रत्येक चीजके मूलमें एक चरम सत्य है, तब भला इस जगत्का स्वरूप कुत्सित क्यों हो गया है? भला यहांकी चीजें एकदम असुन्दर क्यों हो गयी हैं? क्योंकि कुछ अन्य चीजें भी हैं जो दिव्य मूल-स्रोत और अभिव्यक्तिके बीचमें आ उपस्थित होती हैं। उदाहरणार्थ, यदि मैं तुमसे पूछूं, "क्या तुम अपनी सच्ची सत्ताको जानते हो?" तो तुम क्या कहोगे? तुम कहोगे, तुम नहीं जानते; यदि तुम जानते तो वही आश्चर्यजनक बात होती। यही बात सब प्राणियों और सब चीजोंके विषयमें कही जा सकती है। और फिर भी तुम पर्याप्त रूपमें विकसित एक प्राणी हो, चिंतनशील जीव हो, और सुधारके बहुतसे स्तरोंमेंसे गुजर चुके हो; तुम दीवालपर घूमनेवाली ठीक एक छिपकली नहीं हो! तो भी तुम नहीं कह सकते कि तुम्हारी सत्ताका सत्य क्या है। यही जगत्में उत्पन्न विकृतिका रहस्य है। इस विकृतिका कारण यही है कि यहां सर्वत्र अचेतनता है — निश्चेतना — है जो अपने मूलसे पृथक् होनेके कारण उत्पन्न हुई है। यह अचेतनता ही मूल दिव्य तत्त्वको उसकी अपनी ही प्रकृतिके अंदर अभिव्यक्त होनेसे रोकती है, यद्यपि वह तत्त्व वहां सर्वदा विद्यमान रहता है। वह वहां है इसी कारण सब वस्तुएं विद्यमान हैं, संसार विद्यमान है; परंतु अपनी अभिव्यक्तिमें वह विकृत हो गया है, क्योंकि उसे अचेतनताके अंदर, अज्ञान और अंधकारके अंदर अपनेको व्यक्त करना पड़ता है। परंतु ऐसा हुआ कैसे? सृष्टि करनेका संकल्प मूलतः एक संकल्प था जो व्यष्टिभावापन्न आकारोंकी रचना करनेके लिये प्रसारित हुआ; परंतु उससे सच्चा

व्यक्ति (या व्यक्तीकरण) नहीं उत्पन्न हुआ, बल्कि ठोस एकत्व भंग होकर असंख्य टुकड़ोंमें विभक्त हो गया। मूल अविभाज्य एकत्व अब अनंततः विभक्त इकाइयोंकी एक राशि बन गया। ये एकक सत्ताएं या इकाइयां अलग-अलग वस्तुओंका व्यष्टीकरण थीं और वैसा ही अनुभव करती और कार्य करती थीं। दूसरोंसे अपनेको पृथक् अनुभव करना ही ठीक वह चीज है जो तुम्हारे अंदर यह धारणा उत्पन्न करती है कि तुम एक व्यक्ति हो। अन्यथा तुम अनुभव करोगे कि तुम केवल एक जलीय पदार्थ हो। कहनेका तात्पर्य, उस समय तुम महज अपने कठोर बाहरी आकार तथा उन सब चीजोंके विषयमें सचेतन नहीं होगे जो तुम्हें दूसरोंसे काटकर अलग कर देती हैं और तुम्हें एक पृथक् व्यक्ति बना देती हैं, तुम अब प्राणमय शक्तियोंके विषयमें सचेतन हो जाओगे जो चारों ओर घूमा करती हैं, निश्चेतना-के विषयमें सचेतन हो जाओगे जो सब चीजोंका आधार है, तुम्हें ऐसा मालूम होने लगेगा कि तुम एक चलने-फिरनेवाला पिंड हो और उस पिंडमें सब तरहकी परस्पर-विरोधी गतियां विद्यमान हैं जिन्हें एक-दूसरेसे पृथक् नहीं किया जा सकता। तुम्हारे मनपर ऐसी छाप नहीं पड़ेगी कि तुम एक व्यक्ति हो, बल्कि ऐसा मालूम होगा कि तुम एक संपूर्ण गोरखधंधेके अंदरके एक स्वर या कंपनके समान हो। मूल संकल्प यह था कि ऐसे व्यक्तियोंका निर्माण किया जाय जो फिरसे अपने दिव्य मूलके विषयमें सचेतन होनेमें समर्थ हों। व्यष्टी-करणकी इस प्रक्रियाने यह आवश्यकता उत्पन्न कर दी कि व्यक्ति होनेके लिये अपने-आपको पृथक् अनुभव करना होगा। यही कारण है कि हम मूल चेतनासे, कम-से-कम ऊपरसे देखनेमें, विच्छिन्न हो गये हैं और निश्चेतनामें जा गिरे हैं। क्योंकि 'जीवनका जीवन' ही एकमात्र मूल-स्रोत है और यदि यह जीवन उस स्रोतसे पृथक् हो

जाता है तो स्वभावतः ही चेतना अचेतनामें परिणत हो जाती है और तुम अपनी सत्ताके सत्यका पता खो बैठते हो। यही जगत्की सृष्टि या निर्माणकी प्रक्रिया है जिसके कारण शुद्ध मूल वस्तु सीधे अपने मूल और पवित्र रूपमें अभिव्यक्त नहीं होती, बल्कि विकृतिके द्वारा अर्थात् अचेतनता और अज्ञानके द्वारा व्यक्त होती है। इसी तरह कुरूपता घुस आयी, मृत्यु और रोग, पाप और दुःख और अन्यान्य सभी चीजें जगत्में आ गयीं। व्यष्टिभावकी रचनाकी आवश्यकताने जो एक गति उत्पन्न की उसीके कारण य चीजें, इनमेंकी एक-एक चीज, पैदा हो गयी, वही अनेकानेक बुराइयोंके सभी रूपों और प्रकंपनोंका एकमात्र मूल कारण है। मैं यह नहीं कहती कि यह सब अनिवार्य था — इस समस्यापर मैं कभी पीछे विचार करूंगी। पर अभी इस समय मैं तुम्हें इस मूलतक इसलिये ले जा रही हूं कि तुम्हें इसका उपाय बता सकूं। और सच पूछो तो यह पूछनेका कोई मतलब नहीं कि ऐसा क्यों हुआ। जैसा कि मैं कह चुकी हूं, जागतिक समस्याके समाधानका केवल एक ही रास्ता है फिरसे सचेतन होना, खोयी चेतनाको फिरसे पाना। निःसंदेह, यदि तुम कुछ धर्मोंकी तरह यह कहो कि अच्छा अच्छा है और वुरा वुरा तथा वे बराबर वैसे ही रहेंगे तो फिर कोई समस्या ही नहीं रह जाती। इन दोनोंको एक सनातन संघर्ष एक साथ बांधे रखेगा और इनमेंसे जब जो जीतेगा तब वह एक समय संसारको थोड़ा अधिक अच्छा और दूसरे समय थोड़ा अधिक वुरा बना देगा। परंतु दोनों ही बने रहेंगे, सनातन रूपसे दोनोंकी सत्ता बनी रहेगी और बिना एक-दूसरेमें घुले-मिले दोनों आपसमें गुंथे रहेंगे। परंतु तुमने देखा है कि बात ऐसी नहीं है; हम इस उलझनसे निकलकर सत्यके पूर्ण एकत्वमें आ सकते हैं, क्योंकि वही एकमात्र और मूल स्रोत है।

मैं दुहरा दूं कि इसी पूर्ण सत्यने अपनेको बाहरमें, इन असंख्य छोटे-छोटे परमाणुओंमें, इन तुच्छ मस्तिष्क-कोषोंमें छितरा दिया है, जो अपने अज्ञानके बावजूद भी, चेतनाके एक गुप्त हिलोरेके कारण गतिशील होते हैं: ये नन्हें-नन्हें अंधकारके धब्बे ज्योतिकी ओर विस्तारित होते हैं जिसे वे पा सकते हैं, क्योंकि वह उनके अंदर विद्यमान है। जिस चीजको वे खोज करते हैं उसे वे पायेंगे। इसमें अधिक या कम समय लग सकता है, पर अंतमें वे अवश्य पायेंगे। अतएव उपाय यही है: स्वयं बुराईके हृदय-केंद्रमें ही यह उपाय निहित है।

भागवत न्याय

जब भगवान् जानते हैं कि लोग सच्चे नहीं हैं तब भी उनसे लोग शक्ति क्यों प्राप्त करते हैं?

तुम्हें यह बात सदाके लिये समझ लेनी चाहिये कि जब भगवान् कार्य करते हैं तब वह मानवीय धारणाओंके द्वारा परिचालित नहीं होते। संभवतः जिसे हम बुद्धि कहते हैं उसके बिना भी वह कार्य करते हैं। कुछ भी हो, उनके कार्य करनेके कारण मानुषी कारणोंके जैसे नहीं होते; और सबसे बड़ी बात यह है कि न्याय-संबंधी जो भावना मनुष्यमें है वह भगवान्‌में नहीं है। उदाहरणार्थ, जब तुम देखते हो कि एक आदमी धनके लोभमें डूबा हुआ है, महज कुछ रुपये पानेके उद्देश्यसे लोगोंको ठगनेकी चेष्टा कर रहा है तो तुम्हारी न्यायसंबंधी भावना चिल्ला उठती है कि ऐसे मनुष्यसे सारा धन छीन लेना चाहिये और उसे दरिद्र बना देना चाहिये। परंतु वास्तवमें तुम देखते हो कि बात बिलकुल उलटी

हो रही है; यद्यपि वह परिस्थितिका केवल बाहरी रूप होता है; उसके पीछेका दृश्य एकदम अलग ही होता है। लोभी मनुष्य अपने लोभका विषय पा जाता है, परंतु उसे उसके बदले कुछ देना भी पड़ता है, उसे अपनी कुछ दूसरी संभावनाओंको छोड़ना पड़ता है। वह धन तो पा जाता है, पर अपनी चेतनामें पतित हो जाता है। और फिर बहुत बार ऐसा भी होता है कि जब वह उस चीजको पा जाता है जिसे वह इतना अधिक चाहता था तो वह अपनेको उतना प्रसन्न नहीं अनुभव करता, साधारणतया वह पहलेसे भी कम प्रसन्न दिखायी देने लगता है: जो धन उसने पाया है उसीके कारण वह दुःखी हो जाता है। बाहरी सफलता या बाहरी विफलताको देखकर ही तुम्हें किसी बातका विचार नहीं करना चाहिये। मोटे तौरपर हम कह सकते हैं कि मनुष्य जो कुछ मांगता है भगवान् उसे वह दे देते हैं और यही सबसे उत्तम तरीका है जिससे मनुष्य पाठ सीखता है। अगर तुम्हारी कामना अज्ञानपूर्ण है, अचेतन, अंध और स्वार्थपूर्ण है तो तुम अपने अंदर अज्ञान, अचेतनता, अंधता और स्वार्थपरताको बढ़ाते हो, कहनेका तात्पर्य, तुम धीरे-धीरे सत्य और सचेतनता और प्रसन्नतासे, दूसरे शब्दोंमें भगवान्से दूर हट जाते हो। भगवान्के लिये, अवश्य ही, केवल एक ही चीज ऐसी है जो सत्य है और वह है भागवत चेतना, भागवत एकत्व। जितनी बार तुम स्थूल वस्तुओंको अपने सामने रखते हो उतनी ही बार तुम अधिकाधिक स्थूल बनते जाते हो, उतनी ही बार तुम अधिकाधिक भगवान्को पीछेकी ओर धकेल देते हो। अज्ञानी मनुष्योंकी आंखों-को ऊपरसे संपूर्ण रूपमें ऐसा प्रतीत हो सकता है कि तुम्हें अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है, परंतु यह सफलता, सत्यकी दृष्टिसे, एक भयानक हार है, तुमने मिथ्या वस्तुके बदले सत्यको बेच डाला है।

बाहरी रूपोंको देखकर, ऊपरी सफलताको देखकर विचार करना पूर्ण अज्ञानकी एक क्रिया है। जिस मनुष्यका हृदय अत्यंत कठोर बन गया है और जिसे बाहरमें अत्यधिक सफलता प्राप्त हो चुकी है उसमें भी एक दूसरी मिली-जुली चीज होती है। ठीक यह कठोरता, यह पर्दा ही जो उसकी बाहरी चेतना और आंतरिक सत्यके बीच आ जाता है और अधिकाधिक मोटा होता जाता है, क्रमशः अधिक असह्य होता जाता है। बाहरी सफलताके लिये मनुष्यको बहुत अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है। मनुष्यको बहुत महान्, बहुत शुद्ध-पवित्र होना पड़ता है, उसे अत्यंत ऊंची, अत्यंत स्वार्थहीन आध्यात्मिक चेतना प्राप्त करनी होती है और तभी वह सफलता प्राप्त करके भी उससे जरा भी प्रभावित नहीं होता। किसी दूसरी चीजको सहन करना उतना कठिन नहीं है जितना कि सफलताको सहन करना। सच पूछो तो जीवनकी यही सच्ची कसौटी है। जब तुम सफलता नहीं प्राप्त करते तब तुम स्वभावतः ही अपनी ओर मुड़ते हो, अपने अंदर पैठ जाते हो और वहां अपनी बाह्य असफलताके लिये सांत्वना खोजते हो। और जिन लोगोंके अंदर ज्योति जल रही है और जिन्हें सचमुचमें भगवान् सहायता कर रहे हैं, कहनेका मतलब, जो लोग सहायता प्राप्त करनेके लिये काफी तैयार हो चुके हैं, (भगवान्के) पथका अनुसरण करनेके योग्य बन चुके हैं उन्हें तो यही आशा करनी चाहिये कि उनके ऊपर एकके बाद एक प्रहार होता रहे, क्योंकि उससे उन्हें सहायता मिलती है। निःसंदेह वह अत्यंत शक्तिशाली, अत्यंत सीधी और अत्यंत प्रभावशाली सहायता होती है। परंतु तुम्हें यदि सफलता मिली हो तो बस सावधान हो जाओ! स्वयं अपने-आपसे पूछो कि तुमने उसके लिये क्या मूल्य चुकाया है? कौन-सी वह चीज है जिसे तुमने उस सफलताके बदलेमें दी है? अवश्य ही कुछ लोग

दूसरे प्रकारके भी होते हैं। वे ऐसे लोग हैं जो बहुत आगे बढ़ चुके हैं, जो अपनी अंतरात्माके विषयमें सचेतन हो चुके हैं, जो संपूर्ण रूपसे समर्पित हो चुके हैं; ऐसे लोग सफलता प्राप्त कर सकते हैं और सफलता उनको नहीं छूती। परंतु सफलताके बोझको अपने कंधेपर उठानेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको बहुत ऊपर उठना होता है। संभवतः यह अंतिम और चरम परीक्षा होती है जिसे भगवान् किसीके सामने रखते हैं। वह कहते हैं: "अब जब कि तुम महान्, उच्च और निःस्वार्थ बन गये हो, तुम एकमात्र मेरे हो। मैं तुम्हें विजयी बनाऊंगा। हम देखेंगे कि आया इस प्रहारको तुम सह सकते हो या नहीं।"

असुरोंको भी भगवान् वह चीज दे देते हैं जिसे वे मांगते हैं। साधारणतया इसी तरीकेसे उनका अंत बहुत शीघ्र आता है। असुर एक सचेतन प्राणी होता है। वह जानता है कि उसका अंत निश्चित है। वह जानता है कि संसारमें जो मनोभाव उसने ग्रहण किया है वह कुछ दिनोंके बाद उसका अवश्य नाश कर देगा। निःसंदेह असुरका समय मनुष्यके समयसे बहुत लंबा होता है। फिर भी वह जानता है कि एक दिन उसका अंत आयगा ही, क्योंकि उसने शाश्वततासे अपना नाता तोड़ लिया है। वह बस यह कोशिश करता है कि जबतक उसके सर्वनाशका दिन, उसकी अंतिम पराजय नहीं आ जाती तबतक अधिकसे अधिक, जितनी मात्रामें चरितार्थ करना संभव हो उतनी मात्रामें, वह अपनी कामनाओंको चरितार्थ कर ले। और यदि उसे अपने पथका अनुसरण करने दिया जाय तो कहीं अधिक संभव है कि उसकी पराजय शीघ्र आ जाय। यही कारण है कि ठीक जिस समय महान् बातें घटित होने जा रही होती हैं ठीक उसी समय विरोधी शक्तियां अत्यधिक क्रियाशील बन जाती

हैं, अत्यंत तीव्र रूपमें सक्रिय और बाह्यतः अत्यंत सफल हो उठती हैं। उन्हें मानों अपने सर्वनाशकी ओर दौड़ पड़नेके लिये एक खुला मैदान छोड़ दिया जाता है।

भागवत कष्ट

साधारणतया जब कोई दुःखी होता है तब भगवान्‌के समष्टि-गत दुःखमें एक और दुःख जुड़ जाता है। भगवान् एक गभीर करुणा-का भाव लेकर जड़तत्त्वपर क्रिया करते हैं: यह करुणा जड़तत्त्वके अंदर एक रूप ग्रहण करती है और वहां विकृत होकर वह चीज बन जाती है जिसे हम "चैत्य कष्ट" (psychic sorrow) के नामसे पुकारते हैं। यह मानो मूल सद्वस्तुकी एक उलटी मूर्त्ति होती है।

भगवान्‌की करुणा जब व्यक्तिगत भौतिक चेतनाके अंदर रूपां-तरित होती है तब वह एक दुःखका रूप ले लेती है जो अहंकारपूर्ण नहीं होता, वह एक ऐसा दुःख होता है जो सहानुभूतिकी भावनाके द्वारा जागतिक कष्टके साथ प्राप्त तादात्म्यकी अभिव्यक्ति होता है। इस अनुभवका वर्णन मैंने 'प्रार्थना और ध्यान' नामक अपनी पुस्तक-की एक प्रार्थनामें कुछ विस्तारके साथ किया है। वहां मैंने "जीवन-में अपनी आंखोंसे गिरनेवाले अत्यंत मधुर आंसुओं"का जिक्र किया है; क्योंकि वे आंसू मेरे अपने लिये नहीं थे, मैं स्वयं अपने लिये नहीं रो रही थी। प्रायः प्रत्येक प्रसंगमें मनुष्य अहंकारजन्य कारणोंसे-मानुषी तरीकेसे दुःख करता है। जब कोई किसी ऐसे व्यक्तिको खो बैठता है जिसे वह प्यार करता है तो वह दुःख करता और

रोता है, पर उस व्यक्तिकी अवस्थाके कारण नहीं: सौमेंसे निन्यानवे या उससे भी अधिक प्रसंगोंमें लोग यह नहीं जानते कि गुजरा हुआ व्यक्ति किस अवस्थामें है, वे यह नहीं जानते और न जान ही सकते हैं कि आया वह व्यक्ति सुखी है या दुःखी, आया वह कष्ट भोग रहा है या शांतिमें निवास कर रहा है। वास्तवमें वियोगकी भावना उन्हें कष्ट पहुंचाती है, यह बोध कष्ट देता है कि अब वह उन लोगोंके साथ नहीं रहेगा जिसे वे इतना अधिक पसंद करते हैं। समस्त मानवीय दुःख-शोकके मूलमें यह स्वयं अपनी ओर मुड़नेका भाव विद्यमान रहता है, भले ही वह कम या अधिक ज्ञानपूर्वक हो, कम या अधिक स्वीकार किया जाता हो। परंतु जब तुम दूसरोंके दुःखके लिये अपनेको दुःखी अनुभव करते हो तब उसमें थोड़ी मिलावट आ जाती है। कहनेका तात्पर्य, तुम्हारे व्यक्तिगत दुःखमें एक चैत्य तत्त्व युक्त हो जाता है जिसका वर्णन मैंने भागवत अनुकंपाकी उलटी मूर्त्तिके रूपमें किया है। अब, अगर तुम उन दोनोंके बीच, व्यक्तिगत वेदना और अनासक्त शोक-संतापके बीच विभेद कर सको, जो कुछ अहंकारपूर्ण है उससे बाहर निकल सको और दिव्य तत्त्वके ऊपर एकाग्र हो सको, उसके साथ अपनेको एक बना सको तो तुम इस तरीकेसे उस महान् विश्वव्यापी करुणाके साथ अपना संपर्क स्थापित कर सकते हो जो एक बृहत्, विशाल, स्थिर, शक्तिशाली और गभीर वस्तु है, जो पूर्ण शांति और अनंत आनंद है। फिर, यदि तुम्हें यह मालूम हो कि अपने कष्टके भीतर कैसे प्रवेश किया जाता है और तुम उसकी एकदम तहमें पैठ जाओ, उसमें जो अंश अहंकारपूर्ण और व्यक्तिगत है उसके परे चले जाओ, अत्यंत दूरतक चले जाओ तो तुम एक अद्भुत अनुभवके दरवाजेपर पहुंच जाओगे। अवश्य ही तुम्हें कष्ट भोगने और इस अनुभूतिको पानेके लिये तो

कष्टकी खोज नहीं करनी चाहिये; पर जब वह हो, जब वह तुम्हारे ऊपर आ जाय तब जो कुछ मैंने कहा है उसके अनुसार चेष्टा करो, अपने कष्टकें अंदर विद्यमान अहंकारकी सीमाको, बाधाको पार कर जाओ : सबसे पहले यह देखो कि अहंकारपूर्ण अंश कहां है, वह कौन-सी चीज है जो तुम्हें दुःखी बनाती है, तुम्हारे कष्टका अहंजन्य कारण क्या है, फिर उसे पारकर उसके परे चले जाओ, किसी विश्वगत वस्तुकी ओर, किसी महत्तर तत्त्वकी ओर आगे बढ़ जाओ। उसके बाद तुम विराट्, अनंत करुणाके अंदर प्रवेश करते हो, तुम्हारे लिये चैत्य जगत्का दरवाजा खुल जाता है। उस लोकमें यदि तुम मुझे रोते हुए देखते हो, जैसा कि तुमने अपने स्वप्नमें मुझे देखा था, तो तुम उसी समय मेरे साथ एकत्व स्थापित कर सकते हो, मानों उन्हीं आंसुओंमें प्रवेश कर सकते हो, उन्हींमें घुलमिलकर एक हो सकते हो। उससे दरवाजा खुल जायगा और तुम्हें एक अनुभूति प्राप्त होगी, एक अत्यंत अद्‌भुत अनुभूति प्राप्त होगी जो सदा ही चेतनाके ऊपर एक गहरी छाप छोड़ जाती है। वह छाप, उस दरवाजेके फिरसे बंद हो जानेपर भी और अपनी साधारण क्रियाओंमें तुम जैसे रहते हो वैसा ही एक बार फिर तुम्हारे बन जानेपर भी, पूरी तरह कभी नहीं मिटती। वह अनुभूति, वह छाप पीछेकी ओर बनी रहती है और तुम उसे स्मरण कर सकते हो, उसके अंदर वापस जा सकते हो, अपनी एकाग्रताके क्षणोंमें उसका सहारा ले सकते हो। उसके बाद तुम अनुभव करते हो कि एक अनंत मधुरिमा, एक महान् शांति-का विशाल समुद्र तुम्हारी सारी सत्तामें परिव्याप्त हो रहा है, वह केवल तुम्हारे विचारमें ही नहीं है; वह बाहर जाता है और प्रत्येक वस्तुके साथ सहानुभूति दिखाता है तथा प्रत्येक चीजको स्वस्थ-नीरोग बना सकता है।

केवल तुम्हें सच्चाईके साथ स्वस्थ होनेकी इच्छा करनी चाहिये, संकल्प करना चाहिये। सब कुछ बस इसी बातपर निर्भर है। अब मैं उसी एक विषयपर वापस आ रही हूं जिसकी चर्चा बराबर ही करती हूं। तुम्हें सच्चा बनना चाहिये। यदि तुम अनुभवके लिये कोई अनुभव चाहो और, एक बार जब वह तुम्हें मिल जाय तब तुम फिरसे अपने साधारण तरीकोंको ही अपना लो तो उससे काम नहीं चलेगा। तुम्हें सच्चाईके साथ स्वस्थ होनेकी — ठीक-ठीक अपने साधारण तरीकोंसे मुक्त होनेकी इच्छा करनी होगी, तुम्हें अभीप्सा रखनी होगी, बाधाको पार कर जाने, ऊपर ही ऊपर चढ़ते जाने और अपने ऊपर तथा परे चले जानेकी सच्ची अभीप्सा रखनी होगी जिसमें कि तुम सभी सीमाओंको भंग करनेके लिये, अपनेको शुद्ध और पवित्र बनानेके लिये तथा अपने रास्तेमें आनेवाली सभी चीजोंसे मुक्त होनेके लिये उन चीजोंको छोड़ सको जो तुम्हें पीछे खींचती हैं, नीचेकी ओर घसीट लाती हैं। यदि तुम्हारे अंदर यह संकल्प हो, प्राचीन भूल-भ्रांतियोंमें फिरसे पतित न होने, अंधकार और अज्ञानसे निकलकर, जो कुछ मानवीय, अत्यंत मानवीय — अत्यंत तुच्छ, अत्यंत अज्ञान-पूर्ण — है उससे मुक्त होकर ज्योतिकी ओर ऊपर उठ जानेका सच्चा और तीव्र संकल्प हो तो यह संकल्प, यह अभीप्सा कार्य करेगी, धीरे-धीरे कार्य करेगी, प्रबल और प्रभावशाली रूपमें तुम्हारे लिये एक पूर्ण और सुनिश्चित परिणाम उत्पन्न करेगी। परंतु सावधान, तुम्हारे अंदर कोई ऐसी चीज नहीं होनी चाहिये जो पुरानी गति-विधियोंसे चिपकी हुई हो, जो अपने-आपको प्रकट न करती हो बल्कि अपना मुंह छिपाती हो और जब अवसर अनुकूल आता हो तो तुरंत अपना नथुना बाहर निकालती हो।

इसीलिये मैं कहती हूं कि तुम्हें सच्चे रूपमें, बहुत सच्चे रूपमें

सच्चा-सरल होना चाहिये। अगर तुम अपने अंदर कहीं गहराईमें कोई ऐसी चीज पाओ जिसने जोरसे पकड़ रखा हो, जो चिपकी हुई हो तो तुम्हें उसे उखाड़ फेंकनेके लिये तैयार रहना चाहिये, उसे पूर्ण-रूपेण मिटा देनेके लिये प्रस्तुत रहना चाहिये और ऐसी चेष्टा करनी चाहिये कि वह अपना कोई भी चिह्न पीछे न छोड़ जाय। हां, कभी-कभी तुम अपनी भूलोंको दुहराते हो। तुम तबतक दुहराते रहते हो जबतक कि तुम्हारा कष्ट अत्यंत तीव्र और असह्य नहीं हो जाता और तुम्हें मानो अपने स्वभावके बावजूद भी सच्चा बननेके लिये बाध्य नहीं कर देता। परंतु उस रास्तेका अनुसरण करना तुम्हारे लिये आवश्यक नहीं। वह एक पद्धति तो है, पर बुरी पद्धति है। बुरी इसलिये है कि वह बहुत अधिक चीजें नष्ट कर देती है, बहुत अधिक शक्ति व्यर्थमें खर्च कर डालती है, बहुत अधिक अनुचित प्रकंपन छोड़ जाती है। जब तुम्हारा कष्ट बहुत तीव्र हो जाता है तब अवश्य ही तुम पूर्ण सच्चा बननेका संकल्प भी करते हो। परंतु तुम उससे कम कठिन और कम कष्टपूर्ण तरीकेसे भी सच्चे बन सकते हो।

प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें एक क्षण आता है, एक ऐसा क्षण आता है जब पूर्ण सच्चा बननेकी वह आवश्यकता अंतिम चुनावका एक विषय बनकर सामने उपस्थित होती है। एक व्यक्तिके जीवनमें भी एक क्षण आता है और जिस दलका वह व्यक्ति होता है उस दलके जीवनमें भी एक क्षण आता है जब वह चुनाव करना ही पड़ता है, अंतिम शुद्धिकी क्रिया संपन्न करनी ही पड़ती है। इस तरह यह प्रश्न प्रायः जीवन और मरणका प्रश्न होता है, यदि मनुष्यको बचे रहना हो तो उसे प्रगति करनी ही पड़ती है।

भागवत विरक्ति

यह एक ऐसी 'विरक्ति' है जो पूर्ण करुणासे भरी हुई है। यह एक ऐसी चीज है जो दूसरोंके अनुचित प्रकंपनोंको सुधारनेके लिये उन्हें स्वयं अपने ऊपर ले लेती है। कठोर न्यायकी भावनाके साथ अनुचित क्रियाको भूल करनेवालोंके ऊपर ही लौटा देनेके बदले यह उसे अपने अंदर खींच लेती है, उसे नष्ट कर देने या रूपांतरित कर देनेके लिये उसे आत्मसात् कर लेती है और जितना संभव होता है उतना उसके स्थूल परिणामोंको कम कर देती है। तुम शिवकी प्राचीन गाथा तो जानते ही हो जिनके गलेमें एक काला दाग है, क्योंकि उन्होंने संसारका सारा विष पी लिया था: यह भागवत विरक्ति या असंतोषका एक रूपक है।

स्वभावतः ही विष भगवान्पर वही प्रभाव नहीं डालेगा जो वह मनुष्यपर डालता है। क्योंकि अज्ञानकी स्थिति और ज्ञानकी स्थिति-में एक मूलगत भेद होता है। कोई बात तुम्हारी अज्ञानकी सामान्य अवस्थामें तुम्हारे लिये प्रतिकूल घटती है, उसका एक विशेष रूप होता है और वह मानसिक रूपमें तुम्हारे लिये कुछ परिणाम उत्पन्न करती है। परंतु वही चीज जब ज्ञानकी अवस्थामें तुम्हारे लिये घटती है तब वह वही परिणाम नहीं ले आती। उदाहरणार्थ, एक बहुत स्थूल वस्तुको ले लो, एक आघातको, एक यथार्थ गुरु-गंभीर शारीरिक आघातको ले लो। अब, यदि तुम अचेतनता और अज्ञानकी स्थिति-में हो, जैसा कि तुम बराबर ही रहते हो, तो तुम्हें उसके उस संपूर्ण फलको भोगना होगा, जो आघातके वेगके ऊपर, आघात देनेवाले व्यक्ति या वस्तुके ऊपर तथा तुम्हारी निःसहायताके ऊपर निर्भर करता

है। परंतु वही आघात यदि उसी ढंगसे उसी व्यक्ति या वस्तुके द्वारा परंतु किसी सचेतन और ज्ञानपूर्ण व्यक्तिके ऊपर किया जाय तो वह तुरत एक ऐसी प्रतिक्रिया उत्पन्न करेगा जो उसके स्वाभाविक परिणामोंको घटाकर कम-से-कम कर देगी, यहांतक कि उन परिणामों-को एकदम मिटा देगी; क्योंकि यहां जो प्रतिक्रिया है वह ज्ञानकी, ज्योतिकी प्रतिक्रिया है, वह अज्ञानकी, अंधकारकी प्रतिक्रिया नहीं है। नैतिक स्तरपर इस क्रियाको स्पष्ट रूपमें देखा जा सकता है। उदा-हरणके लिये मान लो कि तुम्हारे हृदयको एक चोट लगती है, परंतु अहंकारपूर्ण अंधताके अंदर नहीं, अर्थात् तुम उसके साथ अपनेको एक नहीं कर लेते या उसमें डूब नहीं जाते; अब तुम उसे अपनेसे कुछ दूर रखते हो, एक बाहरी वस्तुको हम जिस ढंगसे देखते हैं उस ढंगसे उसपर दृष्टि डालते हो, देखते हो कि वह क्या है, उसके प्रकंपनोंके स्वरूपपर ध्यान देते हो इत्यादि-इत्यादि, और फिर उसके ऊपर अपने ज्ञानकी ज्योति फेंकते हो, मानो सत्यकी अधिक गहराईतक पैठनेवाली किरण (ultra-violet ray) डालते हो। उसके फलस्वरूप एक नया मनोभाव उत्पन्न होता है और वह प्रहार अपना प्रभाव खो देता है। ठीक वैसे ही स्थूल प्रहारका स्थूल परिणाम भी इस प्रकार नष्ट हो सकता है। अगर ऐसा करना संभव न होता तो भला भगवान्‌के अशुभ वस्तुको स्वयं अपने ऊपर ले लेनेसे लाभ ही क्या होता? और तब तो अशुभ वस्तु उसी रूपमें बनी रहती और संसार उसी तरह दुःख-कष्ट भोगता रहता। चूंकि अंधकारपूर्ण प्रकंपन दिव्य चेतनाके अंदर ज्योतिके प्रकंपनोंमें रूपांतरित हो जाते हैं, ठीक इसीलिये भग-वान् संसारके समस्त अशुभ वस्तुओंको अपने ऊपर और अपने अंदर ले लेते हैं।

स्थूल घटनाके प्रसंगमें जिस ज्ञानका प्रयोग करनेकी बात मैं

कहती हूं वह शरीरके कोषोंका, उनके अस्तित्व, रचना और विभाजनका आंतरिक ज्ञान है तथा आघातके परिणामोंका, उसके स्वाभाविक और प्रत्याशित प्रभावोंका ज्ञान है। उसके साथ-ही-साथ इस बातका भी ज्ञान होना चाहिये कि कोष किस तरहके होने चाहियें, उन्हें आघातके प्रति किस प्रकार प्रतिक्रिया करनी चाहिये। और इसके लिये जो प्रतिक्रिया काममें लायी जाती है वह भी भौतिक प्रकृतिकी प्रक्रियासे एकदम भिन्न होती है; भौतिक प्रकृति एक क्षतिको दूर करनेमें कई घंटे, दिन और महीने लगा देती है, परंतु आंतरिक ज्ञान उस कामको तुरत-फुरत कर सकता है। यह आंतरिक ज्ञान अपने उच्चतम मूल उद्गमसे नीचे उतारा जा सकता है। महज मनोवैज्ञानिक ज्ञानके बदले मनुष्य अतिमानसिक ज्ञानका नीचे आवाहन कर सकता है और उसे शरीरके विपत्तिग्रस्त भागपर केंद्रीभूत कर सकता है। यदि शरीरके अंग और तत्त्व, उसके कोष सत्यकी शक्तिके प्रभावके अधीन आ जायें और उसे ग्रहण करें तो फिर उच्चतर विधानके अनुसार शरीरके विभिन्न अंग और तत्त्व तत्काल नये रूपमें व्यवस्थित हो सकते हैं। इसके फलस्वरूप केवल शरीरपर लगे हुए आघातका ही शमन नहीं होगा, दुर्घटनाके कारण उत्पन्न क्षतिकी ही पूर्त्ति नहीं होगी, बल्कि साधारण रूपमें सारी चेतनामें ही एक बड़ी उन्नति साधित होगी। चेतनाको अधिकृत करनेवाली इस शक्तिकी कोई सीमा नहीं है। अगर तुमने कोई भूल की है, यहांतक कि कोई भारी भूल की है, और अगर फिर भी तुम इस सत्य चेतनाको, अतिमानसकी इस शक्तिको पुकार सको और उसे कार्य करने दो तो यह तुम्हें एक महान् उन्नति करनेका अवसर प्रदान करेगी। दूसरे शब्दोंमें, यदि तुमने कोई भारी भूल की है, यहांतक कि कई बार की है तो भी उससे कभी निरुत्साहित मत होओ। बस, तुम्हें अपने

संकल्पको दृढ़ वनाये रखना चाहिये और एक-न-एक समय उसे फिर न दुहरानेका अटल संकल्प करना चाहिये। फिर विश्वास रखो, तुम अंतमें अपनी कठिनाईपर अवश्य विजय प्राप्त कर लोगे।

३

अर्थपूर्ण और अर्थहीन वस्तुएं

साधारण जीवनमें सब वस्तुएं ही अर्थहीन होती हैं। जिन विचारोंको तुम सोचते हों, जिन कार्योंको तुम करते हो, जिन अनुभवोंको तुम प्राप्त करते हो, तुम्हारी उन सब क्रियाओंका बिलकुल कोई अर्थ नहीं होता, उनका कोई मूल्य नहीं होता। उनका संबंध तुम्हारी सत्ताके केवल ऊपरी भागके साथ होता है, वे समुद्रकी सतह-पर उठनेवाली हिलोरोंके सदृश आती और चली जाती हैं और गहराईमें अपना कोई चिह्न या प्रभाव नहीं छोड़ जातीं। केवल कभी विरले क्षणमें, यदि वे कभी तुम्हारी आत्माके किसी कोनेको छू लेती हैं, अगर उस अंतरतम चेतनाका कोई भाग तुम्हारे किसी अंगको छू देता है या उसकी ओर ताकता है तो बस एक क्षणकी वह झलक ही एकमात्र अर्थपूर्ण वस्तु होती है जो तुम्हारे जीवन-रूपी उस समस्त निरुपयोगी (वस्तुओंके) स्तूपके बीच घटित होती है। वही एकमात्र बहुमूल्य बिंदु होता है और बाकी सब तो कूड़े-करकटका एक संसार ही होता है। यदि तुम अपने जीवनको अर्थपूर्ण बनाना चाहो, उसे उसका यथार्थ अर्थ और मूल्य प्रदान करना चाहो तो फिर तुम्हें ऊपरी सतहकी क्षुद्र चीजोंसे अपने-आपको पीछे हटाना होगा और पीछेकी ओर विद्यमान किसी अन्य वस्तुकी खोज करनी होगी। अगर जीवनकी वस्तुओंको अर्थहीन न बने रहना हो तो वास्तवमें बहुत गहराईमें पैठना होगा।

हम बातें भूल क्यों जाते हैं ?

निःसंदेह इसके कई कारण हैं। पहला और सबसे प्रधान कारण यह है कि हम याद करनेके लिये "स्मरण-शक्ति" नामक वृत्तिका व्यवहार करते हैं। स्मरण-शक्ति मनका एक यंत्र है और मस्तिष्क-की रचना और विकासपर निर्भर करती है। तुम्हारा मस्तिष्क, अवश्य ही यदि वह पहलेसे ही क्षीण न होने लगा हो तो, निरंतर विकसित होता रहता है; उसका यह विकास-कार्य बहुत दीर्घकालतक, शरीरकी आयुसे भी अधिक कालतक चलता रह सकता है। इस प्रक्रियाके अंदर अनिवार्यतः ही पहलेकी चीजोंके स्थानपर दूसरी चीजें आती रहती हैं, और जैसे-जैसे यंत्र विकसित होता जाता है वैसे-वैसे जो चीजें एक स्तरपर उपयोगी थीं वे अब उसके बादके स्तरपर वैसी उपयोगी नहीं रहतीं और उन्हें दूसरी अधिक उपयुक्त चीजोंके लिये जगह खाली करनी पड़ती है। हमारे अर्जनका शुद्ध परिणाम तो सार-रूपमें रह जाता है, परंतु जिन सब चीजोंके परिणामस्वरूप हम उसे पाते हैं वे अर्थात् मध्यवर्त्ती स्तर दब जाते हैं। निश्चय ही 'अच्छी स्मरण-शक्ति' का अर्थ इससे अधिक और कुछ नहीं है — अर्थात् केवल परिणामोंको याद रखना, जिसमें कि प्रधान-प्रधान चीजें — केवल वे ही चीजें जो भावी रचनाके लिये उपयोगी हों उन्हें चाल लिया जाय और संचित किया जाय। किसी विशेष विषयको कठोर रूपमें बनाये रखनेकी चेष्टा करनेकी अपेक्षा यह कहीं अधिक महत्त्व-पूर्ण है।

एक दूसरी बात भी है। हमारी स्मरण-शक्ति स्वयं अपने स्व-भावमें ही दोषपूर्ण यंत्र तो है ही, इसके अलावा एक दूसरा तथ्य भी

यह है कि एकके पीछे एक चेतनाके कई अलग-अलग स्तर हैं। प्रत्येक स्तर उस मुहूर्त्तकी घटनाओंको, चाहे वे कुछ भी क्यों न हों, सच्चाई-के साथ टांक लेता है। अब, अगर तुम्हारा मन स्थिर और स्वच्छ हो, विस्तृत और सवल हो तो तुम उस मुहूर्त्तकी घटनाओंपर अपनी चेतनाको एकाग्र करके उस समय तुम्हारी गतिविधियोंका जो कुछ अभिलेख दर्ज किया गया था उसका पता लगा सकते हो और अपनी वर्तमान सक्रिय स्थितिमें याद कर सकते हो; तुम एक खास समयमें चेतनाकी एक विशेष स्थितिमें वापस जा सकते हो और वहां फिरसे निवास कर सकते हो। जो कुछ तुम्हारी चेतनामें एक वार लिख जाता है वह कभी नहीं मिटता और इसलिये वह वास्तवमें कभी नहीं भूलता। तुम हजार वर्षोंतक जी सकते हो और तुम उसे नहीं भूलोगे। अतएव, यदि तुम कोई चीज भूलना न चाहो तो तुम्हें अपनी मानसिक स्मरण-शक्तिके द्वारा नहीं, वल्कि अपनी चेतनाके द्वारा उसे बनाये रखना होगा। जैसा कि मैं कह चुकी हूं, मानसिक स्मरण-शक्ति मंद हो जाती है, नयी चीजें, आजकी चीजें पुरानी चीजों, कलकी चीजोंका स्थान ले लेती हैं। परंतु जिस बातके विषयमें तुम अपनी चेतनामें 'सचेतन' हो चुके हो, उसे तुम कभी नहीं भूल सकते। वह कहीं, पीछेकी तहमें पड़ी रहती है, और तुम्हारी आज्ञा पाते ही तुम्हारे पास वापस आ जाती है। तुम्हें वस चेतनाकी उस स्थिति-में पीछे हट जानेकी आवश्यकता होती है जहां वह छिपी पड़ी रहती हैं। इस प्रकार तुम ऐसी बातोंको याद कर सकते हो जिन्हें तुमने शायद शताब्दियों पहले जाना था। इसी तरीकेसे तुम अपने पूर्व-जीवनोंको भी याद कर सकते हो। क्योंकि, चेतनाकी कोई क्रिया कभी नहीं मरती, जो प्रभाव बाहरी मस्तिष्कगत मनपर पड़ते हैं केवल वे ही क्षणिक होते हैं। जो कुछ तुमने इस ऊपरी यंत्रके द्वारा

परिश्रमके साथ सीखा है — केवल पढ़ा, सुना; लिखा और चिह्नित किया है — वह कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ता, परंतु जो कुछ चेतनाके सत्तत्त्वमें सोख लिया जाता है, भीतर ग्रहण कर लिया जाता है वह बना रहता है। मस्तिष्कका निरंतर परिवर्तन और पुनर्गठन हो रहा है। पुराने कोष, जो कोष दुर्बल और क्षीण हो गये हैं उनका स्थान नये-नये और अधिक पुष्ट कोष ले लेते हैं अथवा पुराने कोष विभिन्न रूपमें एकत्र होते या अन्य प्रकारके संगठनोंमें प्रवेश करते हैं। इस तरह जिन पुराने संस्कारों या स्मृतियोंको वे लिये हुए होते हैं वे लुप्त हो जाती हैं।

चेतनाकी जिस स्थितिमें तुमने कोई चीज अनुभव की थी उसी पूर्व-स्थितिमें प्रवेश करके तुम सदा उस चीजको अपनी स्मृतिमें वापस ला सकते हो। बस, तुम्हें यही जाननेकी आवश्यकता है कि तुम उस बिंदुपर, जो कहीं गहराइयोंमें डूबा पड़ा है, कैसे पहुंच सकते हो। मृत्युके बाद शरीर विलीन हो जाता है, प्राण और मनका भी अधिक भाग छिन्न-भिन्न हो जाता है — केवल एक छोटा-सा अंश, जो सुसंगठित होता है, जिसे घना सुदृढ़ आकार मिला होता है, वही बना रहता है। इस तरह प्राण और मनके किसी अंशका स्थायी रूप प्राप्त करना एक विरल घटना है। परंतु चेतनाके साथ दूसरी ही बात घटित होती है। चेतना चिरस्थायी है। यदि तुम चेतनाके साथ अपना संपर्क स्थापित कर लो तो तुम पृथ्वी और सृष्टिका सारा रहस्य जान सकते हो। चेतना ही वह चीज है जो सृष्टि कर सकती है।

दुःखदायी विचारोंसे कैसे मुक्त हों ?

इसके कई उपाय हैं और फिर यह प्रत्येक व्यक्तिपर निर्भर करता है। सबसे पहला और सबसे सरल उपाय यह है कि किसी दूसरी चीजका चिंतन किया जाय। किसी एक ऐसे विषयपर अपने ध्यानको एकाग्र करो जिसका उस चीजसे कोई संबंध नहीं जो तुम्हें परेशान कर रही है। तुम कोई रोचक विषय पढ़ सकते हो या कोई ऐसा काम हाथमें ले सकते हो जिसमें सतर्क रहने और विचार करनेकी आवश्यकता पड़ती हो। यदि कोई सृजनात्मक कार्य किया जाय तो वह अधिक फलदायी होता है। उदाहरणार्थ, लेखक और कलाकार जब अपने विशिष्ट कार्यमें संलग्न होते हैं तब वे दूसरी सभी चीजें भूल जाते हैं, उनका समूचा मन उसी एक विषयमें डूब जाता है। परंतु इसमें संदेह नहीं कि एक बार जब वह कार्य पूरा हो जाता है तो यदि तुमने इस बीच अपने विचारोंको संयमित करना न सीख लिया हो तो, वह कठिनाई फिर आरंभ हो जाती है। इस-लिये इसके लिये एक दूसरी पद्धति है जो थोड़ी अधिक कठिन है। तुम्हें त्याग करनेकी क्रिया सीखनी होगी। जिस तरह तुम किसी स्थूल वस्तुको त्याग देते या फेंक देते हो, ठीक उसी तरह तुम्हें अपने विचारको भी दूर फेंक देना और त्याग देना होगा। यह कार्य अधिक कठिन है, पर तुम यदि इसमें सफल होओ तो यह अधिक उपयोगी साबित हो सकता है। इसका तुम्हें अभ्यास करना होगा, बराबर प्रयास करते रहना होगा, बार-बार करना होगा और एकदम डटे रहना होगा और तब कोई कारण नहीं कि तुम सफल न होओ, बशर्त्ते कि संपूर्ण रूपसे सच्चे होओ और गंभीर भावसे प्रयास करो

एक तीसरी पद्धति भी है। वह है ऊपरसे एक महत्तर ज्योति-को नीचे उतार लाना जो अपने स्वरूपमें ही उन विचारोंकी एक-दम विरोधिनी है जिनके साथ तुम व्यवहार कर रहे हो; वह अत्यंत मौलिक और गभीर अर्थमें उनकी विरोधिनी है; कहनेका तात्पर्य, तुम्हें कष्ट देनेवाले विचार यदि अंधकार और अज्ञानपूर्ण हों, विशेष-कर यदि वे अवचेतना या निश्चेतनासे उठते हों, महज सहजप्रेरणा-के द्वारा संपुष्ट हों तो तुम ऊपरसे ज्योतिका आवाहन कर उसे अंध-कारपूर्ण विचारोंकी ओर मोड़कर उन्हें सहज ही नष्ट कर सकते हो या जहां कहीं संभव हो वहां उन्हें रूपांतरित कर सकते हो। यह सबसे बड़ा उपाय है, परंतु शायद यह सहज रूपमें सबकी पहुंचके भीतर नहीं है। पर तुम यदि इसमें सफल हो जाओ तो फिर यह नहीं कि केवल वे विचार ही नहीं आयेंगे बल्कि उनके आनेका कारणतक दूर हो जायगा। पहली पद्धति है उनसे मुंह मोड़ लेना, दूसरी है उनका सामना करना और उनसे लड़ना तथा तीसरी है उनसे ऊपर उठ जाना और उन्हें रूपांतरित कर देना। तीसरीमें तुम केवल उनसे मुक्त ही नहीं हो जाते बल्कि एक उन्नति, एक सच्ची उन्नति भी कर लेते हो।

अशुभ विचारोंकी रचना

एक बुरा विचार बनाना एक बुरा काम करना है। तुम भले ही इसे न जानो, पर एक अशुभ विचार वास्तवमें एक अशुभ कार्य ही है। यदि तुम किसी मनुष्यके विषयमें बुरा विचार बनाओ, उस-की बुराई चाहो तो उस दुर्भाग्यके लिये तुम्हीं दायी हो जो उसी

मात्रामें उसपर आ सकता है जितनी मात्रामें तुम्हारे द्वारा उसके प्रति कोई बुरा कार्य किये जानेपर आ सकता है। दुर्भाग्यवश लोग बुरा विचार बनानेको कोई दोष नहीं मानते और जब तुम बुरा विचार बनाते हो तो कोई तुम्हें मना नहीं करता। केवल इतना ही नहीं, बल्कि इस प्रकारके भी बहुतसे लोग होते हैं जो दूसरोंमें दुष्ट विचार जगाना एक खेल समझते हैं। वे कभी-कभी महज मूढ़ता-वश ही (वे समझते हैं कि निर्दोष रूपमें) ऐसा करते हैं, अधिकांश समय तो वे मिथ्याभिमानके वश, कुछ मजेदार बात कह डालनेमें आत्मगौरव समझनेकी भावनाके वश ऐसा करते हैं।

जब तुम कोई बुरा विचार पोषण करते हो तो तुम एक बुरी रचना कर डालते हो और तुम उसे अपने इर्दगिर्द लिये फिरते हो या अपने बाहर फेंकते रहते हो। कभी-कभी ऐसा होता है कि जब तुम किसी आदमीकी बगलसे गुजरते हो तो तुम एकाएक अस्वस्थ हो जाते हो, तुम इन दोनों बातोंको न भी जोड़ो और तुम्हें इस बातका तनिक पता भी न चले, पर वास्तवमें वह मनुष्य किसी बुरे विचारका पोषण करता रहा होगा और उसी विचारने तुम्हारे ऊपर आक्रमण किया होगा।

जब तुम्हें कारणका पता चल जाय तब तुम्हारा कार्य यह है कि तुम उसका पीछा करो, मानो वह कोई मक्खी हो। कभी-कभी मक्खियां बहुत तंग करती हैं, जितना ही अधिक तुम उन्हें भगाते हो उतना ही अधिक वे आती हैं और उसे एक दिलचस्प खेल समझती हैं। परंतु तुम यदि गंभीर होओ और इच्छा करो तो तुम उन्हें दूर भगानेमें सफल हो सकते हो। ठीक उसी ढंगसे जब कोई अशुभ रचना तुम्हें छूने या अधिकृत करनेकी चेष्टा करे तो तुम तुरत उसे अलग ढकेल दो और जबतक वह विलीन न हो जाय तबतक उसे बार-बार बाहर ढकेलते रहो।

तुम पूछते हो कि आखिर कोई अशुभ संकल्प होना ही क्यों चाहिये ?

तुम वस्तुओंके एकदम मूलमें चले जाओ। भला वहां निश्चेतना, अज्ञान और अंधकार क्यों है? तुम पूछते हो कि विश्व कैसे और कहांसे उत्पन्न हुआ? यह सृष्टि इस प्रकारकी क्यों है और दूसरे प्रकारकी क्यों नहीं है? प्रत्येक आदमीने इसकी व्याख्या अपने निजी ढंगसे दी है। दार्शनिकोंने इसकी व्याख्या दी है, वैज्ञानिकोंने दूसरे ही ढंगसे व्याख्या दी है। परंतु किसीने इससे निकलनेका रास्ता नहीं पाया है। तुम पूछते हो कि अशुभ संकल्प क्यों है, परंतु वास्तवमें मनोरंजक और प्रधान बात यह है कि एक ऐसा उपाय ढूंढ़ा जाय जिससे कोई अशुभ संकल्प आवे ही नहीं। भला यह पूछनेसे क्या लाभ कि दुःख-दर्द, कष्टभोग और संकट क्यों हैं जबतक कि उसका उद्देश्य कोई उपाय ढूंढ़ निकालना न हो? अगर तुम 'क्यों'की खोज करो तो तुम जितनी चाहो उतनी व्याख्याएं पा सकते हो, उनमेंसे प्रत्येक ही एक प्रकारसे उपयोगी हो सकती है, परंतु कोई भी, सिवा एक अंधेरी गलीके, कहीं दूसरी जगह नहीं ले जाती।

संसारमें ऐसी बहुतसी चीजें हैं जिन्हें तुम पसंद नहीं करते। कुछ लोग जो, जैसा कि वे कहते हैं, ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, यह पता लगाना चाहते हैं कि यह सब ऐसा क्यों है। यह ज्ञानका पथ है। परंतु मैं कहती हूं कि यह पता लगाना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है कि वर्तमान समयमें चीजें जो कुछ हैं उससे भिन्न उन्हें कैसे बनाया जाय। ठीक यही समस्या है जिसे बुद्धने स्वयं अपने सामने रखा था। वह एक पेड़के नीचे बैठ गये और तबतक बैठे रहे जबतक

उन्हें समाधान नहीं मिल गया। वह समाधान, फिर भी, बहुत संतोषजनक नहीं है: "तुम कहते हो कि संसार बुरा है, तो आओ, इस संसारको ही समाप्त कर दें"; परंतु इससे लाभ किसको होगा, जैसा कि अत्यंत समुचित रूपमें श्रीअरविन्द पूछते हैं? संसार उसके बाद बुरा नहीं रहेगा, क्योंकि अब उसका अस्तित्व ही नहीं रहेगा। संसारको सिमटकर अपने मूल स्वरूपमें, आदि शुद्ध सत्ता या असत्में वापस चला जाना होगा। तब मनुष्य, श्रीअरविन्दके शब्दोंमें, एक ऐसी चीजका सर्वशक्तिमान् प्रभु बन जायगा जिसका अस्तित्व ही नहीं है, वह राज्यविहीन राजा, साम्राज्यविहीन सम्राट् बन जायगा। यह एक समाधान है। परंतु दूसरे समाधान भी हैं जो इससे अच्छे हैं। हम अपने समाधानको सबसे अच्छा समझते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो बुद्धकी तरह यह कहते हैं कि बुराई अज्ञानसे आती है, अज्ञानको दूर करो और बुराई भी विलीन हो जायगी। दूसरे कहते हैं कि बुराई विभाजनसे, पृथक्तासे आती है; अगर विश्व अपने मूलसे पृथग्भूत न होता तो कोई बुराई उत्पन्न ही न होती। दूसरे लोग फिर यह घोषणा करते हैं कि एक अशुभ संकल्प है जो इस सबका, पृथक्ता और अज्ञानका कारण है। तब प्रश्न उठता है कि यह अशुभ संकल्प आता कहांसे है? अगर यह वस्तुओंके मूलमें ही हो तो यह स्वयं मूलमें ही रहा होगा। और, इसलिये कुछ लोग स्वयं इस अशुभ संकल्पपर ही संदेह करते हैं,—ऐसी कोई चीज तत्त्वतः, मूलतः नहीं है, यह निरा भ्रम है।

क्या पशुओंमें अशुभ संकल्प होता है?

मैं ऐसा नहीं समझती। पशुओंके संबंधमें जो भयावह बातें कही जाती हैं उनका कारण वास्तवमें अशुभ संकल्प नहीं होता।

आओ, उदाहरणके लिये कीड़े-मकोड़ोंका जगत् ले लें। ऐसा मालूम होता है कि सभी पशुओंकी अपेक्षा इसी जातिमें दुष्टताका भाव सबसे अधिक है, वह अशुभ संकल्पसे प्रायः मिलती-जुलती चीज है। परंतु बात यहां महज यही हो सकती है कि हम चेतनाके अपने तरीकेको उनके ऊपर लागू करते हों, हम एक ऐसे कार्यपर अशुभ संकल्प थोप देते हों जो सचमुचमें उस प्रकारका न हो। उदाहरणार्थ, कुछ ऐसे कीड़े हैं जिनका अर्भक (larva) केवल सजीव प्राणीके ऊपर ही रह सकता है; उन्हें किसी जीवंत प्राणीको ही खानेकी जरूरत होती है, मरे मांससे उनका पोषण नहीं होता। इसलिये जो अंडे अर्भकमें परिणत होते हैं उन्हें देनेके पहले कीड़ा-मां भूमि तैयार करती है; वह किसी दूसरे कीड़े या किसी छोटे जानवरको खोजती है, उसके एक स्नायु-केंद्रमें डंक मारती है और उसे मुरदार बना देती है; फिर उस मुरदार शरीरमें निर्विघ्न अंडे देती है जो मृत न होनेके कारण अर्भकोंके अंडोंसे बाहर आनेपर उन्हें भोजन देता है। यह सब बहुत कुछ धूर्ततापूर्ण दिखायी देता है। परंतु यहांपर कोई बात सोच-समझकर नहीं निश्चित की गयी है, यह महज सहजवृत्ति है। क्या तुम इसे अशुभ संकल्प कहोगे? यह केवल वंश-विस्तार करनेका संकल्प है। तुम शायद कह सकते हो कि ये कीड़े ऐसी जातिके किसी प्रेतके द्वारा परिचालित होते हैं जो सचेतन होती है और जिसमें सचेतन संकल्प होता है और यह संकल्प अशुभ संकल्प होता है। ये सत्ताएं जो नाना प्रकारके कीड़े-मकोड़ोंका जगत् उत्पन्न करती या स्वयं बनती हैं—उनमेंसे बहुतेरी मैंने जो उदाहरण दिया है उससे कहीं अधिक राक्षसी रूपमें कार्य करती हैं—तब अवश्य ही यथार्थ रूपमें डरावनी होंगी और विकृत तथा दानवीय कल्पनाके द्वारा प्रेरित होती होंगी। बिलकुल संभव है। क्योंकि,

कहा जाता है कि कीड़े-मकोड़ोंके जगत्का मूल प्राणमय जगत्में है; कीट-पतंगके जगत्के रचयिता चेतनाके भौतिक स्तरके साथ नहीं बल्कि प्राणमय स्तरके साथ संबंध रखते हैं; दूसरे शब्दोंमें, वे केवल अशुभ संकल्पके प्रतीक ही नहीं होते बल्कि उसके प्रतिनिधि होते हैं और उसीको जीवनमें चरितार्थ करते हैं। वे अपने अशुभ संकल्पके विषयमें पूर्णतः सचेतन होते हैं तथा उस संकल्पको जानबूझकर और एक सुनिश्चित उद्देश्यसे प्रयुक्त करते हैं। मनुष्यका बुरा संकल्प बहुधा प्राणमय सत्ताओंके बुरे संकल्पका ही प्रतिबिंब, अनुकरण होता है और उनका वह संकल्प स्पष्टतः इस सृष्ट जगत्का विरोधी होता है तथा उसका सुस्पष्ट उद्देश्य होता है वस्तुओंको जितना संभव हो उतना दुःखपूर्ण, कठिन, कुरूप और भयावह बनाना। इन्हीं सत्ताओंने, किसी तरह, कीट-पतंगोंकी सृष्टि की है। पर तो भी, हम यह, नहीं कह सकते कि कीड़े अशुभ संकल्पका प्रतिनिधित्व करते हैं, क्योंकि वे जानबूझकर अपकार नहीं करते, वे अपने अंदर विद्यमान अचेतन संकल्पके द्वारा परिचालित होते हैं। बुरा संकल्प तो सचमुचमें वह संकल्प है जो अपकार करनेके लिये ही अपकार करता है, जो नाश करनेके लिये ही नाश करनेकी चेष्टा करता है, जो अपकार करनेमें ही आनंद लेता है। मैं नहीं समझती कि पशुओंमें इस प्रकारका अशुभ संकल्प होता है, विशेषकर उच्चतर जातियोंमें। वहां जो चीज है वह है आत्मरक्षाकी, अंध और तीव्र प्रतिक्रियाओंकी सहज प्रवृत्ति, परंतु वह उस कोटिका अशुभ नहीं है जिसे मानवसंकल्प विकृत मानव-मनमें प्रकट करता है। मेरी रायमें मानव मन ही जब प्राणमय सत्ताओंके सीधे प्रभावमें आ जाता है तब वह उलटे तरीकेसे काम करना आरंभ करता है। दैत्य, असुर अशुभ संकल्पकी सत्ताएं हैं, वे पूर्ण रूपसे प्राणमय जगत्से संबंध रखते हैं और जब वे हमारे

इस संसारमें अभिव्यक्त होते हैं तब उनका उद्देश्य अपकार करना ही होता है, वे नुक्सान करनेके लिये ही नुक्सान करते हैं, वे संहार करनेके लिये ही संहार करते हैं, उन्हें निषेधमें ही, प्रतिवाद करनेमें ही आनंद मिलता है।

लोग बिल्लियोंकी दुष्टताकी चर्चा करते हैं जब वे, उदाहरणार्थ, चूहोंको खानेसे पहले उनके साथ खेलती हैं। मैंने इस बातको ध्यान-पूर्वक देखा है और मैं जानती हूं कि बात क्या है। तुम जैसा सोचते हो वैसी बात वहां बिलकुल नहीं है। बिल्लियां जो कुछ करती हैं उसे करती हैं, परंतु किसी दुष्टताके वश या बर्बर निर्दयताके वश नहीं करतीं। बिल्ली-मां अपने बच्चोंके लिये शिकार करती है। वह एक चूहा पकड़ती है; अगर वह तुरत वैसेका वैसा नन्हें बच्चोंको दे दे तो वे उसे खा नहीं सकेंगे, वह उनके लिये कड़ा और चिमड़ा मांस होगा। इसलिये वह उनके साथ खेलती है, हम लोगों-को वह ऐसा करती हुई प्रतीत होती है; वह खेलती है, अर्थात, वह उसे ऊपर उछालती है, उसे लुढ़काती है, फिर उसे पकड़ती है, उसे कुछ आघात देती है, फिर एक बार उसे उछालती है, यह सब महज मांसको मुलायम बनानेके लिये, पहले ही उसे तैयार कर लेनेके लिये करती है जिसमें कि छोटे-छोटे बच्चे उसमें अपने दांत गड़ा सकें और उसे आसानीसे खा सकें। निश्चय ही केवल खेलनेके उद्देश्यसे, खेलके आनंदके लिये ही वह खेलना नहीं है। इस कार्यके पीछे उतना ही अशुभ संकल्प है जितना कि कसाईखानेमें काम करने-वाले मनुष्यके पशु-वधके पीछे विद्यमान है। पशु शिकार करता है और अपने भोजनको, अपने शिकारको यथासंभव उत्तम रूपमें तैयार करता है। उसके पास न तो चूल्हा है न अंगीठी और न वह रसोई ही बनाता है; उसके पास भी तो कोई अपना एक तरीका होना ही

चाहिये जिससे वह अपने भोजनको मुलायम और खाने योग्य बना सके।

यह भी कहा जाता है कि जीवंत प्राणियोंमें प्रेमका जो प्रथम प्रकाश होता है वह है जिसे प्यार किया जाय उसे खा जानेकी इच्छा। प्रेम करनेका मतलब होता है आलिंगन करना, अपने अंदर मिला लेना, निगल जाना। यह इस बातको साबित करता हुआ प्रतीत होता है कि जब बाघ अपने शिकारको या सांप अपने शिकार-को पकड़ता है तब दोनों ही अवस्थाओंमें शिकार, यद्यपि आरंभमें संत्रस्त होता है, बिलकुल ही दुःख नहीं पाता, बल्कि निगले जानेके एक प्रकारके आनंदके साथ अपनेको निगलने देता है। मैं तुम्हें एक सच्ची कहानी सुनाऊंगी, इसे मैंने जिस आदमीसे सुना है उसीका यह अनुभव है। एक आदमी अपने कुछ मित्रोंके साथ एक जंगलमेंसे गुजर रहा था। उसके मित्र उससे कुछ आगे जा रहे थे, वह पीछे था। हठात् एक मनुष्यभक्षी बाघने उसे पकड़ लिया। उसके साथी यह जाननेके लिये पीछे लौटे कि आखिर उनके अनुपस्थित मित्रको क्या हो गया है। उन्होंने पद-चिह्नोंका अनुसरण किया और दौड़े हुए वे ठीक समयपर आ पहुंचे और उन्होंने अपने मित्रको निगलनेका मौका बाघको नहीं दिया। जब वह आदमी थोड़ा स्वस्थ हुआ तो उससे कहा गया कि ओह! कितने भयानक अनुभवमेंसे आपको गुजरना पड़ा। परंतु प्रत्येक आदमीके आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब उसने घोषणा की कि "बिलकुल नहीं, आप जरा कल्पना कीजिये, मैंने समझा ही नहीं कि क्या हुआ है, परंतु जब बाघ मुझे घसीटे ले जा रहा था तब मेरे अंदर उसके लिये बड़ा प्रेम अनुभव हुआ और मुझे बड़ी इच्छा हुई कि वह मुझे खा जाय!" हां, यह एक सच्ची घटना है और मैं जरा भी इसे बढ़ा नहीं रही हूं। एक बार मैंने

स्वयं अपनी ही आंखों बहुत-कुछ इसी तरहकी चीज देखी थी। पेरिसके चिड़ियाखानेमें एक विशाल अजगर एक पिंजड़ेमें रखा था। वह पशुओंको खिलानेका समय था और मैं संयोगसे वहां उपस्थित थी। पिंजड़ा खोला गया और एक छोटा-सा सफेद चूहा अंदर डाल दिया गया। वह बहुत ही छोटा जानवर था। जैसे ही उसने सांपको देखा वैसे ही वह पिंजड़ेके दूसरे कोनेमें दौड़ गया और बिलकुल कांपता हुआ सिमटकर बैठ गया। सांप जरा भी हिला नहीं था, उसने महज अपना सिर घुमा लिया था। ऐसा मालूम होता था मानो वह आधी नींदमें हो, चुपचाप उसने अपनी गर्दन और सिर बाहर निगाले और चूहेकी ओर देखना आरंभ किया। बड़ा ही डरावना वह दृश्य था! सांप बिना हिले-डुले सिर्फ चूहेकी ओर ताकता रहा। अब मैंने दूसरा ही दृश्य देखा। जो चूहा भयका एक स्तूप हो रहा था, उसने कांपना बंद कर दिया; वह सिकुड़ा हुआ था, अब साधारण स्थितिमें तन गया। उसके बाद उसने अपना सिर उठाया, अपनी आंखोंको पूरा खोल लिया और सांपकी ओर आंखें फाड़कर ताकने लगा; वह धीरे-धीरे, बहुत धीरे-धीरे आगेकी ओर बढ़ने लगा और जब वह काफी नजदीक आ गया तब सांपकी गर्दन झट निकल आयी और चूहा उसके मुंहमें आ गया। फिर भोजन तैयार करनेका कार्य शुरू हुआ। सांप लोटा, उसने अपने शरीरको मरोड़ा, अपने शिकार-के अंगोंको तोड़ डाला, उसे चबाकर मुलायम पिंड जैसी एक चीजमें उसे परिणत कर डाला जो अधिक आसानीसे उसके गलेके नीचे उतर जाय। इस सबमें भला कहां है वह अशुभ संकल्प, वह दुर्वृत्ति? जब कोई मनुष्य इस तरहकी कोई चीज करता है तब वह इसे सहज भावसे, अपनी स्वाभाविक सहजप्रेरणाके वश नहीं करता, बल्कि अपने मन और अपने मनकी कुप्रवृत्तियोंके द्वारा चालित होकर करता

है जो स्वस्थ सहजप्रेरणासे भिन्न बात है, स्वस्थ सहजप्रेरणा तो उसके पास है ही नहीं। परंतु मनुष्यने तो उन्मुक्त और स्वतंत्र रूपमें काम करना चाहा था न?

परंतु यथार्थ में सहजप्रेरणा है क्या? यह प्रकृति माताकी चेतना है। प्रकृति अपने कार्यके विषयमें सचेतन है; यह कोई व्यक्तिगत चेतना नहीं है। यह वृत्ताकार या समष्टिगत चेतना है। जातियोंकी भी एक चेतना होती है। प्रत्येक जातिकी एक अपनी चेतना है जिसे कभी-कभी उस जातिकी आत्मा कहा जाता है, अर्थात् यह माना जाता है कि एक विशिष्ट जातिके ऊपर अधिष्ठान करनेवाली एक सचेतन सत्ता होती है। प्रकृति इस अर्थमें सचेतन है कि वह जानती है कि वह क्या चाहती है, वह अपना 'किधर' और अपना 'कैसे', अपना लक्ष्य और वहां पहुंचनेका रास्ता जानती है। प्रकृतिका अधिकांश कार्य मनुष्यको असंबद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि उसकी (मनुष्यकी) चेतना संकीर्ण है और उसे सर्वदर्शी दृष्टि नहीं प्राप्त है। जब तुम छोटी-छोटी ब्योरेकी चीजोंको, नन्हें-नन्हें टुकड़ोंको देखते हो तब तुम नहीं समझ पाते; तुम्हें उनमें कोई संबंध, क्रमपरंपरा, अर्थ नहीं दिखायी देता। पर प्रकृतिमें एक सचेतन संकल्प हैं, वह एक सचेतन सत्ता है। संभवतः 'सत्ता' (Being) शब्द अति मानवीय है। जब हम प्रकृतिकी 'सत्ता' की बात कहते हैं तब हम स्वभावतः ही 'मानवीय सत्ता' की बात ध्यानमें रखते हैं, बस थोड़ी उससे बड़ी या शायद उससे बहुत बड़ी, परंतु कम या अधिक मात्रामें ठीक उसी तरीकेसे काम करनेवाली उसे समझते हैं। परंतु बात ऐसी नहीं है। 'सत्ता' (Being) शब्दके बदले मैं 'अस्तित्व' (entity) शब्दका व्यवहार करना अधिक पसंद करूंगी। उस सचेतन अस्तित्वमें, जो कि प्रकृति है, एक सचेतन

संकल्प है और वह मनुष्यकी अपेक्षा बहुत अधिक समझ-बूझकर और उद्देश्यपूर्ण तरीकेसे काम करता है और उसके पास अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहार करनेके लिये प्रबल शक्तियां हैं। मनष्य अंधी और प्रचंड प्रकृतिकी चर्चा करते हैं। परंतु सच पूछा जाय तो मनुष्य ही अंधा और प्रचंड है, प्रकृति नहीं। तुम कहते हो कि भूकंप एक भयंकर व्यापार है। हजारों मकान धूलिसात् हो जाते हैं, लाखों मनुष्य मर मिटते हैं, पूरेके पूरे शहर भूमिसात् हो जाते हैं, पृथ्वीके समूचे खंड भूगर्भमें समा जाते हैं आदि-आदि। हां, मनुष्यके दृष्टिकोणसे प्रकृति वीभत्स (राक्षसीय) प्रतीत होती है। परंतु आखिरकार उसने किया क्या है? जब तुम्हारे शरीरपर कहीं कोई चोट पहुंचती है तो वहां एक नीला दाग पड़ जाता है। क्या तुम उसके लिये बेचैन होते हो? तुम्हारा भूकंप तुम्हारे शरीरके एक कोषमें थोड़ा हेर-फेर हो जानेसे अधिक और कुछ नहीं है। तुम अपने जीवनके प्रति मुहूर्त्त हजारों कोषोंको नष्ट कर रहे हो। क्या तुम भयंकर हो? बस यही है वह आपेक्षिक संबंध। और जरा विचार करो, हम केवल पृथ्वी और पार्थिव घटनाओंकी चर्चा कर रहे हैं। स्वयं यह पृथ्वी इस विश्वके वक्षस्थलपर क्या चीज है? एक बिंदु, एक शून्य। तुम जमीनपर चल रहे हो और नीचे नहीं देख रहे हो। तुम एक पग आगे रखते हो और फिर दूसरा एवं तुम अपने पैरोंके नीचे हजारों निर्दोष चीटियोंको कुचल रहे हो। अगर तुम चींटी होते तो तुम चिल्ला उठते, कितनी निर्दय और मूढ़ है यह शक्ति! अब दूसरी शक्तियोंकी कल्पना करो जो तुमसे बहुत बड़ा आकार धारण कर गर्वके साथ पदक्षेप कर रही हैं और उनके आकस्मिक पगोंके नीचे तुम्हारे जैसे लाखों जीव कुचले जा रहे हैं, बड़े-बड़े प्रायद्वीप नीचे धंस रहे हैं और पहाड़ ऊपर उछाले

जा रहे हैं। वे शक्तियां ऐसी प्रलयंकरी घटनाओंकी ओर दृष्टि-पाततक नहीं कर रही हैं! मनुष्य और चींटीमें बस इतना ही भेद है कि मनुष्य जानता है कि उसे क्या हो रहा है और चींटी नहीं जानती। परंतु फिर भी क्या तुम इस विषयमें निःसंदिग्ध हो ?

स्वप्न क्यों भूल जाते हैं ?

इसका कारण यह है कि स्वप्न सर्वदा चेतनाके एक ही क्षेत्रमें नहीं घटित होते। हमारी सत्ताका एक ही भाग नित्यप्रति स्वप्न नहीं देखता और न एक ही जगत्में मनुष्य स्वप्न देखता है। अगर मनुष्य अपनी सत्ताके सभी भागोंके साथ सचेतन संपर्क बनाये रखे तो वह अपने सभी स्वप्नोंको याद रख सकता है। परंतु वास्तवमें तुम नींदके समय अपनी सत्ताके कुछ थोड़ेसे भागोंके साथ ही सचेतन संपर्क बनाये रहते हो। उदाहरणार्थ, तुम अपने सूक्ष्म शरीरमें एक स्वप्न देखते हो, अर्थात्, उस क्षेत्रमें देखते हो जो भौतिक शरीरके बहुत नजदीक है। ऐसे स्वप्न साधारणतया रात्रिके अंतिम भागमें, तुम्हारे जगनेके ठीक पहले प्रातःकालके आरंभिक भागमें (जैसे चार और पांच बजेके बीच) आते हैं। बिछौनेसे उठनेके पहले, यदि तुम खूब शांत-स्थिर बने रहो, जरा भी हिलो-डुलो नहीं और थोड़ा-सा मनको एकाग्र करो तो, ठीक जगनेसे पहले तुमने जिन स्वप्नोंको देखा था उन्हें तुम याद कर सकोगे; स्थूल भौतिक तथा सूक्ष्म भौतिक सत्ताके बीच निकट संबंध होनेके कारण तुम काफी आसानीसे याद करनेमें समर्थ होओगे। अब तुम यदि एकदम आरंभसे ही

देखना शुरू करो तो तुम देखोगे कि प्रायः इसी तरहकी कोई चीज घटित होती है। जब तुम नींदमें डूब जाते हो तब शरीर शांत-स्थिर हो जाता है और प्राण भी आराम करने लगता है; परंतु मन सक्रिय ही रह जाता है, वह अभी नहीं सोता। अब तुम ऐसे स्वप्न देखते हो जिन्हें मानसिक स्वप्न कहा जाता है। वे उन सब विभिन्न भावनाओं और कल्पनाओंसे बनते हैं जो नींदमें स्वतंत्र होकर विचरण करती हैं। कुछ समयके बाद मन थक जाता है और निश्चल-नीरव बन जाता है; प्राण तबतक काफी आराम कर चुका होता है और अब उसके जगनेकी बारी आती है और अब वह विचरने लगता है। तुम्हारे मानसिक स्तरके स्वप्न पीछे धकेल दिये जाते हैं और उनका स्थान प्राणिक स्वप्न ले लेते हैं। जब तुम अपने प्राणमें सक्रिय होते हो तो तुम बहुधा अपने शरीरसे बाहर चले जाते हो, नाना प्रकारके स्थानोंमें घूमते हो और विभिन्न प्रकारके वीरोचित और साहसिक कार्योंमें संलग्न होते हो। यदि तुम उसी समय एकाएक जग जाओ तो स्वप्नमें किये हुए प्राण-जगत्‌के तुम्हारे कठिन कार्य याद रह जायेंगे। कुछ लोग रातमें एक निश्चित समयपर उठ जानेका अभ्यास करते हैं। वे इस भांति ठीक जगनेसे पहलेके अपने स्वप्नोंको अपनी स्मृतिमें ले आते हैं। अब बहुत देरतक काफी सक्रिय रहनेके बाद प्राण भी क्लांत हो जाता है और विश्राम करने चला जाता है। परंतु उसके बाद अब सत्ताका दूसरा भाग प्राणका स्थान ले लेता है और सामने आ जाता है। अब संभवतः सूक्ष्म शरीरके रंगभूमिमें उतरनेकी बारी आती है। प्राण पीछे हटा दिया जाता है और उसके साथ तुम अपना संबंध खो बैठते हो।

रात्रिकी अपनी सभी नाना-विध क्रियाओंके विषयमें सचेतन होने; उन्हें पुनः अपनी स्मृतिमें ले आनेके लिये एक प्रकारके शिक्षणकी

आवश्यकता है। सत्ताके जिन विभिन्न स्तरोंमें तुम रातको विचरण करते हो वे, जैसा कि तुम देख ही चुके हो, साधारणतया एक-दूसरेसे पृथक् होते हैं। दो स्तरोंके बीचमें एक अंतराय होता है; तुम एक-से दूसरेमें कूदकर चले जाते हो। वहां कोई ऐसा राजपथ नहीं जो तुम्हारी चेतनाके सभी क्षेत्रोंमेंसे होकर गुजरता हो, विना व्यतिक्रम या व्याघातके उन्हें जोड़ता हो। इसीका अर्थ है विस्मरण। जव तुम एक स्तरसे दूसरेमें कूद जाते हो तव जिसे तुम पीछे छोड़ते हो उसे पीछे ढकेल देते हो अर्थात् उसे भूल जाते हो। अतएव तुम्हें एक पुल तैयार करना होगा और वहुत थोड़ेसे लोग ही यह जानते हैं कि पुल कैसे तैयार किया जाता है; उसे तैयार करनेके लिये पार्थिव पुल बनानेकी अपेक्षा बहुत अधिक इंजिनियरिंगके ज्ञानकी आवश्यकता होती है। तुम्हें नींदमें वहुत अद्‌भुत अनुभव प्राप्त हो सकते हैं पर तुम उन सबको भूल जाते हो; संभवतः तुम्हें, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, अंतिम अनुभव ही याद रहता है, वही याद रहता है जो भौतिक मनके सबसे अधिक समीप होता है। अतएव समस्त रातको याद रखने और उसके विषयमें सज्ञान होनेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि अंतसे आरंभ किया जाय और पीछेकी ओर वापस जाया जाय। तुम्हारी स्मृतिमें अभीतक जो अंतिम चित्र विद्यमान है उसे धागेके एक खुले छोरकी तरह पकड़ लो और फिर खींचो, धीरे-धीरे खींचो, जवतक कि चित्रके बाद चित्र वापस न आने लगें; यह बात प्रायः किसी सिनेमा-फिल्मको उलटी दिशामें खोलने-की जैसी है। जब तुम चित्र खो बैठो तो ठहर जाओ और थोड़ासा एकाग्र हो जाओ। इधर-उधर जो टुकड़ा या क्षीण स्मृति अभी भी बनी हो या अधिक आसानीसे पुनः जागरित की जा सकती हो उसे वापस लानेका प्रयास करो और उसके वाद फिर धीरे-धीरे, हौले-

हौले खींचो, जो कुछ प्रकट हो उसे ले लो, फिर सब टुकड़ोंको जोड़नेकी कोशिश करो। इस तरीकेसे, कुछ दिन प्रयास और अभ्यास करनेके बाद तुम इस खोये हुए अवस्तन क्षेत्रके अधिकांश भागको पुनः आयत्त करनेमें समर्थ होगे।

जो हो, इस चीजके लिये प्रयास करनेके कई रास्ते हैं। क्योंकि तुम्हें यह जानना चाहिये कि तुम्हारी सभी रातें एक जैसी नहीं होतीं। प्रत्येक रात भिन्न प्रकारकी होती है और अपनी निजी ढंगकी नींद और स्वप्न ले आती है। जिस तरह प्रत्येक दिन एक जैसा नहीं होता और उसकी अपनी विशिष्ट प्रकारकी क्रियावली होती है, उसी तरह प्रत्येक रात भी अपने विशेष अनुभवोंके साथ आती है। तुम्हें ऐसा लग सकता है कि कोई एक दिन कम या अधिक ठीक अपने पहलेके दिनके जैसा ही है, तुम समझ सकते हो कि दिन-प्रतिदिन तुम एक ही चीज कर रहे हो; परंतु बात ऐसी नहीं है। बाहरी रूपमें क्रियाएं एक जैसी प्रतीत हो सकती हैं, पर वास्तवमें उनका स्वरूप और तात्पर्य दिन-प्रति-दिन बदलता रहता है। इस विश्वमें कोई दो क्षण एक समान नहीं होते। तुम्हारी रात भी अपने ढंगका एक विश्व है। प्रत्येक रात अपनी निजी समस्या ले आती है और उसे अपने निजी समाधानकी आवश्यकता होती है।

आश्रमके बच्चोंसे

प्रारंभमें, स्वभावतः ही, आश्रममें कोई बच्चे नहीं थे। वे स्वीकृत नहीं होते थे, उन्हें भर्त्ती करना नामंजूर कर दिया जाता था। केवल विगत महायुद्धके बाद ही, मतलब, जब उनके परिवारों-

ने एक सुरक्षित आश्रयस्थल खोजनेकी चेष्टा की तब, उन्होंने यहां आना आरंभ किया। तबसे उन्हें स्वीकार किया जाता है और इसके लिये मुझे कोई खेद नहीं। मेरा विश्वास है कि उन वयस्क लोगोंकी अपेक्षा जो यह समझते हैं कि हम सब कुछ जानते हैं इन बच्चोंके बीच, जो कुछ भी नहीं जानते, भविष्यके लिये बहुत अधिक मसाला अर्थात् कामकी चीज है। क्या तुम्हें मूर्ति-कलाके विषयमें कोई धारणा है? लोग मिट्टीसे मूर्त्तियां कैसे बनाते हैं? तुम थोड़ी-सी मिट्टी ले लेते हो और फिर उसे पानीसे गीली बना लेते हो। मिट्टीका पाउडर बहुत बारीक होता है और पानी डालकर तुम उसकी अच्छी-सी लोई बना लेते हो। फिर तुम उसपर काम करना, क्रमशः उसे एक आकार देना शुरू करते हो। परंतु जबतक तुम काम करते रहते हो तबतक मिट्टीको मुलायम, भीगी अवश्य बनाये रखना होगा; केवल तभी तुम उसे बदल सकते हो, जैसा तुम चाहते हो वैसा उसे फिरसे गढ़ सकते हो। और जब गढ़ना हो जाता है तब मूर्त्तिको पकाया जाता है और वह कठोर और सुदृढ़ बन जाती है। अब अगर तुम्हें कोई परिवर्तन करना हो तो तुम उसे केवल तोड़ सकते और नये सिरेसे गढ़ना आरंभ कर सकते हो; क्योंकि अब वह ठोस और अपरिवर्तनीय बन गयी है। जीवनमें भी कुछ ऐसी ही चीज घटित होती है। जैसे-जैसे तुम बड़े होते हो वैसे-वैसे तुम अपनी कोमलता, नमनीयता और सुघटनीयता खोते जाते हो, तुम अधिकाधिक घनीभूत, पत्थर-जैसे और अचल-अटल बनते जाते हो। जबतक तुम अपने आकारको हजारों टुकड़ोंमें नहीं भंग कर देते तबतक उसे एक नये नमूनेके अनुसार फिरसे ढालने, पुनः गठित करनेकी कोई संभावना नहीं रहती। बच्चा बिना आकारकी गीली मिट्टी है और हम उससे कोई चीज बना सकते हैं। बच्चे-

की सबसे बड़ी सुविधा यह है कि वह वर्द्धित नहीं हुआ है, वह बढ़ना चाहता है, एकमात्र विचार जो बच्चोंको अभिभूत करता है वह यह है कि हम कैसे बड़े (वयस्क) मनुष्य बनें। परंतु वे यह नहीं जानते कि जहां वे एक बार वयस्क हुए, अर्थात् विकसित और निर्मित हुए कि वे अपने मूल्यका तीन-चौथाई भाग खो बैठेंगे। वास्तवमें उनका मूल्य ठीक इस तत्त्वके कारण ही है जिसने अभी आकार नहीं ग्रहण किया है और जो एक आकार लेनेके लिये उत्सुक है, जो निरंतर आगे बढ़नेका, उन्नति करनेका प्रयास करता है और जिसे सुधारने या नये रूपमें गढ़नेके लिये तोड़नेकी आवश्यकता नहीं।

वयस्क मनुष्य बहुत कुछ उस यात्रीके जैसा होता है जिसने अपना सारा जीवन-काल ऊपर शिखरतक पहुंचनेमें लगा दिया है, वह सीधी सड़क या आसान चढ़ाईका रास्ता न जाननेके कारण पहाड़के चारों ओर चक्कर काटता रहा है। एक बार चोटीपर पहुंचते ही ऐसे लोग बूढ़े और शक्तिहीन हो जाते हैं और अब और आगेकी ऊंचाई-पर चढ़नेकी न तो उनके पास शक्ति होती है और न समय। अवश्य ही कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो रास्ता जानते हैं या जिन्हें रास्ता दिखा दिया गया होता है, वे सीधे रास्तेका अनुसरण करते और शीघ्र ही चोटीपर पहुंच जाते हैं। वे उसके बाद भी यौवनोचित शक्तिसे पूर्ण होते हैं, क्षितिजकी ओर दृष्टिपात करते हैं और यह देखते हैं कि अन्य कौनसे क्षेत्र अभी और बाकी हैं जिन्हें मुझे पार करना है। दूसरे लोगोंमें महज परे देखनेकी प्रवृत्तिका ही अभाव नहीं होता, बल्कि वे इस भावनासे भी भरे होते हैं कि उन्होंने यथेष्ट कार्य कर लिया है — अर्थात् काफी चक्कर काट चुके हैं — और अब वे अपने प्राप्य विश्रामके लिये लालायित होते हैं। तुम्हें, मेरे बच्चो, इससे भिन्न, एकदम पहाड़की तराईसे एक 'फ्यूनिक्यूलर' (funicular

—लोहेकी जंजीरकी सहायतासे पहाड़पर ऊपर उठनेवाली) रेल-गाड़ीके द्वारा ऊपर, मानों सीधे शिखरकी ओर ले जाया जा रहा है। वहां तुम समस्त संसारके सामने, स्वयं अपने सामने खड़े होगे और उससे आगेकी कठिन यात्राको देखोगे तथा उसके लिये स्वयं निर्णय करोगे। और यह सब एक ही शर्त्तपर किया जा रहा है कि तुम बच्चे, बालवत्, प्रसन्न, सुखी वने रहोगे, भगवान्के हाथोंमें एक बालक, एक नमनीय पदार्थ बने रहनेमें ही आनंदित रहोगे।

पहले बच्चे क्यों नहीं स्वीकार किये जाते थे?

क्योंकि जहां बच्चे रहते हैं वहां तुम्हें उनके साथ व्यस्त रहनेके सिवा दूसरा कुछ नहीं करना चाहिये। बच्चे एक ऐसा विषय हैं जो सब कुछ ग्रास कर जाता है। जहां बच्चे हों वहां प्रत्येक चीज उन्हींके लिये और उन्हींके विषयमें संगठित होनी चाहियें, प्रत्येक चीज उन्हींके चारों ओर घूमती रहनी चाहिये: उन्हींकी उन्नतिकी दृष्टिसे समस्त चीजोंकी योजना बननी चाहिये। सो, दृष्टिकोण ही संपूर्ण रूपसे बदल जाता है। परंतु अवस्थाएं पहले भिन्न प्रकारकी थीं। सर्वप्रथम, उस समय एक प्रकारकी कठोरता और रिक्तता थी जो वयस्क लोगोंके ही उपयुक्त थी, पर जिसे बच्चोंपर नहीं लादा जा सकता था। वयस्क लोगोंसे तुम कह सकते हो, "इसे लो या इसे छोड़ दो।" अगर तुम परिस्थितियोंसे संतुष्ट नहीं हो, यदि उन्हें सहन करना तुम्हारे लिये कठिन प्रतीत होता हो, तो तुम यहां रहनेके लिये बाध्य नहीं हो, तुम अपना रास्ता आप देख सकते हो। परंतु तुम वही बात एक बच्चेसे नहीं कह सकते। तुम्हें कोई एक ऐसा काम करनेके लिये किसी बच्चेसे कहनेका अधिकार ही नहीं जो उसकी स्वाभाविक वृद्धि और विकासके लिये उपयोगी न हो। बच्चों-

को परिपक्वताकी एक विशेष अवस्था अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिये और उसके बाद ही वे कोई चुनाव कर सकते हैं। तुम उन्हें चुनाव करनेकी क्षमता प्राप्त करनेसे पहले ही चुनाव करनेके लिये विवश नहीं कर सकते। अतएव सबसे पहले तुम्हें वे सब चीजें उन्हें देनी होंगी जिनकी उन्हें सामान्यतया आवश्यकता पड़ती है। सो, यह बात सारे संगठनमें एक क्रांति उत्पन्न कर देती है। मैंने एकांतका जीवन विताया है, मैं एक दल बनाकर रहनेवाले एकांतवासी लोगोंके जीवनको जानती हूं। वह एकदम दूसरी ही चीज है। बच्चोंके लिये दूसरी अवस्थाओं और दूसरी व्यवस्थाओंकी आवश्यकता होती है।

हम छोटे-छोटे नये आगंतुकोंसे अब यह नहीं कहते कि तुम योग करने जा रहे हो। हम उनसे कहते हैं, तुम्हें यहां ऐसी अवस्थाएं प्राप्त होंगी जिनमें तुम स्वतंत्र रूपमें और अधिक अच्छे ढंगसे वर्द्धित, उन्नत हो सकते हो। यहां तुम यह बात सीख सकते हो कि किन अवस्थाओंमें संसार और समाजको और भी सुंदर बनाया जा सकता है। उसके बाद फिर तुम्हारे लिये अपने भाग्यकी धारा निश्चित करनेका समय आयेगा।

४

गुह्य विद्या

यह प्रायः ही कहा जाता है और यह बहुत ठीक भी है कि ज्योंही तुम अदृश्य वस्तुओंके राज्यमें प्रवेश करते हो त्योंही जो एकदम पहली चीजें तुम्हारे सामने आती हैं वे सच्चे अर्थमें भयावनी होती हैं। यदि तुममें जरा भी डर न हो तो ही तुम सुरक्षित हो; परंतु अत्यंत थोड़ा-सा भी भय यदि हो तो उसका अर्थ है अत्यधिक विपत्ति। यही कारण है कि प्राचीन युगोंमें साधकको दीर्घ कालतक एक कठोर अनुशासनका पालन करना पड़ता था और उसका ठीक-ठीक यही उद्देश्य होता था कि साधनमार्गपर चलना आरंभ करनेकी स्वीकृति पानेसे पहले वह भयसे और उसके फलस्वरूप विपत्तिकी सब प्रकारकी संभावनासे मुक्त हो जाय।

और यही कारण है कि अबतक मैंने तुम लोगोंसे इस विषयकी चर्चा नहीं की है। परंतु तुम लोगोंमेंसे यदि कोई आदमी यह समझता हो कि ऐसी चीजोंके लिये उसमें रुचि है, या इस दिशामें उसे कोई विशेष प्रवृत्ति है और वह सभी दुर्बलताओंको जीतनेके लिये तैयार है तो मैं उसकी सेवाके लिये हाजिर हूं, उसे सहायता करने तथा उसे गुह्य विद्याकी दीक्षा देनेके लिये तैयार हूं। परंतु मेरा ख्याल है कि अभी भी तुम्हें अपनी चेतनामें थोड़ा और वर्द्धित होना चाहिये, तुम्हें अधिक परिपक्व बनना चाहिये और फिर उसके बाद ही मैं तुम्हारा भार ले सकती हूं।

निश्चय ही, उम्र वास्तवमें कोई बाधा नहीं है। जब मैं केवल १२ वर्षकी ही थी तभी गुह्य विद्याका अभ्यास करने लगी थी। परंतु मैं तुम्हें बतला दूं कि मुझे तनिक भी भय नहीं था। मुझे किसी चीजसे भय नहीं होता था। इस अभ्यासके समय तुम शरीर-से बाहर निकल आते हो, शरीरके साथ मानो एक बहुत ही झीने, प्रायः अदृश्य, सूतके टुकड़ेसे तुम जुड़े होते हो। अगर धागा हठात् टूट जाय तो बस सब कुछ समाप्त हो जाता है, तुम्हारे जीवनतकका अंत हो जाता है। तुम शरीरसे निकलकर दूसरे जगत्में चले जाते हो और चारों ओर दृष्टि दौड़ाने लगते हो और देखते हो कि किस तरहका यह जगत् है। साधारणतया, जैसा कि मैंने कहा है, सबसे पहले जो चीजें तुम वहां देखते हो, वे एकदम भयावनी होती हैं। तुम्हारी सामान्य दृष्टिके लिये तुम्हारे चारों ओरका वायु-मंडल एक-दम खाली होता है; उसमें कुछ भी नहीं होता -- तुम आकाशका नीलापन या सफेद बादल या धूप देखते हो और प्रत्येक चीज सुंदर प्रतीत होती है। पर जब तुम्हारी दूसरी दृष्टि खुल जाती है तब दृश्य बिलकुल दूसरा ही दिखायी देता है। तब तुम देखते हो कि सारा वायुमंडल असंख्य छोटी-छोटी मूर्त्तियोंसे भरा है, जो कामनाओं तथा मानसिक विकृतियोंके टूटे-फूटे अवशेष हैं और उन्होंने तुम्हारे इर्दगिर्द इस तरह भीड़ कर रखी है कि सारी चीज तुम्हें बहुत ही अरुचिकर प्रतीत होती है। निःसंदेह, वह अवस्था सर्वदा ही निश्चित रूपसे बड़ी गंदी होती है। वे मूर्त्तियां तुम्हारे पास आती हैं, तुमपर आक्रमण करती हैं, तुम्हें कष्ट देती हैं और तुम उनसे डरकर कांपने लगते हो। तब फिर वे डरावनी सूरत धारण कर लेती हैं। पर तुम यदि दृढ़ बने रहो, यदि तुम शांत उत्सुकताकी दृष्टिसे उनकी ओर ताक सको, तो फिर तुम देखोगे कि वहां कोई चीज इतनी

अधिक डरावनी नहीं है। वहांकी चीजें शायद सुंदर नहीं हैं पर साथ ही वे भयानक भी नहीं हैं।

अपनी बातको समझानेके लिये मैं तुम्हें एक कहानी सुनाऊंगी। डेनमार्कके एक निवासीसे मेरा परिचय हुआ। वह चित्रकार था और कुछ प्रतिभा रखनेवाला चित्रकार था और उसे गुह्य विद्यामें थोड़ी दिलचस्पी थी। तुममेंसे कुछ लोगोंने उसके विषयमें सुना भी होगा। वह यहां आया था और श्रीअरविन्दसे मिला था। उसने श्रीअरविन्दका एक चित्र भी बनाया था। यह बात यूरोपके प्रथम महायुद्धके समयकी है। वह लौटकर फ्रांस गया और मुझसे मिला। उसने मुझसे कहा कि इस विद्याकी शिक्षा मुझे दीजिये। मैंने उसे सिखाया कि शरीरसे बाहर कैसे निकला जाता है और किस तरह उसपर अपना प्रभुत्व बनाये रखा जाता है इत्यादि-इत्यादि। मैंने विशेष रूपसे उससे यह कहा, जो कि मैं अभी तुमसे कह रही हूं, कि भय मत करना। अब एक दिन वह मेरे पास आया और उसने एक रातका अपना अनुभव सुनाया। उसे एक स्वप्न आया; पर निस्संदेह वह स्वप्न नहीं था; उसे मालूम था कि किस तरह शरीरसे बाहर निकला जाता है और वह जान-बूझकर ही शरीरसे बाहर निकल गया था। जब वह एक बार बाहर निकल गया तब वह यह जाननेकी कोशिश करने लगा कि वह कहां आया है। अकस्मात् उसने देखा कि एक बाघ उसकी ओर आ रहा है, वह बहुत बड़ा और भयावना था, स्पष्ट ही वह भयानक उद्देश्य रखकर ही आ रहा था। पर किसी तरह उस आदमीको मेरी सलाह याद हो आयी। सो, वह खूब शांत और स्थिर बना रहा और मन-ही-मन बोला: "कोई खतरेकी बात नहीं, मैं सुरक्षित हूं, मुझे कुछ भी नहीं हो सकता, मैं संरक्षणकी शक्तिसे घिरा हुआ हूं।" और उसने सीधे

उस पशुकी ओर स्थिरता और निर्भयताके साथ ताकना आरंभ कर दिया। जैसे ही उसने ताकना आरंभ किया, आश्चर्यकी बात है, वैसे ही उसने देखा कि बाघ आकारमें छोटा होता जा रहा है, बराबर घटता जा रहा है और अंतमें जाकर तो वह एक छोटीसी निरीह बिल्ली बन गया!

बाघ किस बातका सूचक था? मैंने चित्रकारसे कहा कि दिनके समय या और किसी समय तुम्हें किसी व्यक्तिपर शायद क्रोध आ गया था और तुम्हारे मनमें उसके विरुद्ध हिंसात्मक विचार उठे थे और उसे तुमने हानि पहुंचाना चाहा था। अब, भौतिक जगत्की तरह ही गुह्य जगत्में भी क्रिया-प्रतिक्रिया अथवा प्रत्यावर्त्तनकी क्रियाका एक नियम है। तुम एक बुरे विचारका पोषण करते हो; वह बाहरसे होनेवाले एक आक्रमणके रूपमें तुम्हारे ऊपर वापस आ जाता है। अतएव वह बाघ चित्रकारके किसी बुरे विचार या आवेगका द्योतक रहा होगा जो उसके ऊपर वापस आ गया होगा, जैसे कि, कहते हैं, अफ्रिकाके जंगली लोगोंका बाण (Boomrang) वापस आ जाता है। यही कई कारणोंमेंसे ठीक एक कारण है कि मनुष्यको अपने विचारों, हृद्गत भावों तथा संवेदनोंपर संयम रखना चाहिये। क्योंकि, तुम यदि किसी मनुष्यके विरुद्ध बुरे विचार बनाओ, उसके लिये दुःखदायी बातोंकी इच्छा करो तो यह संभव है कि तुम अपने स्वप्नमें यह देखो कि वह आदमी तुम्हारे ऊपर, जितने जोरसे तुमने चाहा था शायद उससे भी कहीं अधिक जोरके साथ आक्रमण करने आ रहा है। अपने अज्ञानके कारण तथा अपने पक्षका समर्थन करनेकी झोंकमें तुम कहते हो, "जरा देखो तो, क्या इस आदमीके विषयमें मेरी भावना ठीक नहीं थी, वह मुझे मार ही डालना चाहता था!" परंतु, वास्तविक तथ्यका जहांतक संबंध है, सत्य इसका उलटा

ही है। गुह्य विद्याका यह साधारण नियम है कि यदि तुम कोई रचना बनाओ—उदाहरणार्थ, तुम इस दृष्टिसे एक मानसिक रचना बनाओ कि किसी व्यक्तिको कोई दुर्घटना हो जाय या उसपर कोई दुःखदायी विपत्ति आ जाय और तुम उस रचनाको काम करनेके लिये बाहर भेज दो तो, यदि ऐसा हो कि वह मनुष्य चेतनाके एक उच्च-तर स्तरपर हो, अर्थात्, अगर वह किसीकी हानिकी कामना न करता हो, उस मामलेमें एकदम अनासक्त और उदासीन हो तो, वह रचना उसके पास जाती है परंतु उसके वातावरणमें नहीं प्रवेश करती या उसे नहीं छूती, वह छटककर भेजनेवालेके ऊपर टूट पड़ती है। वैसी अवस्थामें उस रचनाको भेजनेवाले मनुष्यके साथ कोई भारी दुर्घटना हो सकती है :अगर कोई दूसरेकी मृत्युकी कामना करे तो फिर उस-की (कामना करनेवालेकी) मृत्यु भी हो सकती है। ऐसा फल प्रायः ही जादू-मंत्रका हुआ करता है जो गुह्य विद्याका एक विकृत रूप है।

रचनाएं अनेक प्रकारकी होती हैं। एक रचना किसी विशेष कार्यके लिये बनायी जाती है। जब वह कार्य हो जाता है तो वह रचना भी विलीन हो जाती है। परंतु यह एक बहुत बड़ा और जटिल विषय है। तुम समूचा रसायनशास्त्र एक ही घंटेमें नहीं सीख सकते।

इस विषयमें मैं तुम्हें एक और कहानी सुनाऊंगी, क्योंकि वह गुह्य विद्याकी दृष्टिसे कुछ माने रखती है।

पेरिसमें एक बहुत प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। उन्होंने यह कहानी अपनी एक पुस्तकमें लिखी थी। उन्होंने यह जानना चाहा कि मनुष्यकी विचार-शक्ति उसकी सहज-प्रतिक्रियात्मक गतियोंको किस हदतक परिवर्तित या प्रभावित कर सकती है, कितनी दूरतक मनुष्य

अपने सहजप्रेरित या अवचेतन आवेगोंको सचेतन बुद्धिके बलपर संयमित कर सकता है। अतएव एक दिन वह चिड़ियाखानेमें गये। पशुओंके विभागमें बहुत बड़े-बड़े सांप रखे गये थे और उनमेंसे एक सांप अपनी दुष्टताके लिये विशेष रूपसे बदनाम था, उसे बड़ी आसानीसे उत्तेजित और क्रोधित किया जा सकता था। वह बहुत विशाल पशु था, काला पर सुन्दर। अवश्य ही सभी सांप शीशेके बक्सोंमें रखे गये थे और उनके शीशे इतने काफी मोटे थे कि किसी दुर्घटनाकी कोई संभावना नहीं थी। वह वैज्ञानिक पशुओंके ‌ ‌ ‌ ‌ ‌ नेके समयसे पहले ही वहां आये जब कि वह सांप भूखा था; क्योंकि भोजनके बाद सब पशु सो जाया करते थे। वह शीशेके सामने खड़े हो गये, एकदम शीशेके नजदीक आकर उस जानवरको उकसाने और तंग करने लगे। ठीक मुझे याद नहीं कि उसे उत्तेजित करनेके लिये उन्होंने क्या किया, परंतु वह तो क्रोधसे पागल हो गया; वह एक लचकदार कमानी (spring) की तरह उछल पड़ा और उन महाशयके मुंहपर तीरकी भांति झपटा जो शीशेके ठीक दूसरी ओर प्रायः उससे सटे हुए खड़े थे। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि उन्हें कुछ भी नहीं होगा, घेरा मजबूत और खतरेसे खाली है, और फिर भी जब-जब सांपने उनपर आक्रमण किया तब-तब प्रत्येक बार हो मानो उसकी चपेटसे बचनेके लिये वह पीछेकी ओर उछल पड़ते। यह बात लगातार होती रही और चाहे जितने जोरके साथ उन्होंने अपने मनमें अपनी सुरक्षा और निरापदताके विषयमें सब तरहकी युक्तिको बार-बार दुहराया पर वह अपनी प्रतिक्रियात्मक गतिको संयमित नहीं कर सके।

केवल एक बात उन वैज्ञानिकको नहीं मालूम थी — गुह्यज्ञानका एक तत्त्व उनकी समझके परे रह गया था। सांपकी भौतिक क्रियाके

साथ-साथ उसकी स्नायविक शक्तिका एक प्राणमय रूप पर्याप्त मात्रा-में प्रक्षिप्त हो रहा था। वास्तवमें यही चीज उन्हें अदम्य शक्तिके साथ आघात कर रही थी। यह प्रायः तीव्र भौतिक आघात-जैसी ही एक चीज है और महज बुद्धि-विचारके अंदर इसे संयमित करनेकी शक्ति नहीं है। इसे रोकने और वशमें करनेके लिये तुम्हें गुह्य विद्याकी शिक्षा प्राप्त करनी होगी।

रहस्यवाद और गुह्यवाद

रहस्यवाद कम या अधिक एक प्रकारका भावप्रधान संबंध है जिसे मनुष्य उस सत्ताके साथ स्थापित करता है जिसे वह भागवत शक्ति मानता है — वह अत्यंत घनिष्ठ, भावोत्तेजक और तीव्र संबंध किसी ऐसी अदृश्य सत्ताके साथ बनाया जाता है जिसे मनुष्य भगवान् समझता है।

गुह्य विद्या है अदृश्य शक्तियोंका ज्ञान तथा उन्हें व्यवहृत करने-की शक्ति। यह एक विद्या है, एकदम एक प्रकारका विज्ञान है। मैं बराबर ही गुह्य विद्याकी तुलना रसायनशास्त्र या भौतिक विज्ञान-के साथ किया करती हूं। क्योंकि गुह्य ज्ञान बहुत कुछ वैज्ञानिक ज्ञानके ही जैसा है, केवल विज्ञान भौतिक वस्तुओं और शक्तियोंके साथ सरोकार रखता है जब कि गुह्य विद्याका कारोबार अदृश्य सत्ताओं और शक्तियोंके साथ, उनके संयोग और सम्मिलनकी संभा-वनाओंके साथ होता है। और जिस तरह तुम अपने रासायनिक या भौतिक ज्ञानके द्वारा स्थूल क्रियाओंके ऊपर अपना अधिकार स्थापित करते हो, उसी तरह गुह्य ज्ञानके द्वारा तुम सूक्ष्म क्रियाओं-

पर अधिकार जमाते हो, उन्हें सक्रिय और सफल बनाते हो। पद्धति भी बिलकुल वैज्ञानिक ही है। इसे ठीक उसी तरह सीखना होता है जिस तरह कि तुम किसी विज्ञानको सीखते हो। यह आंतरिक बोध या भावावेगका कोई विषय नहीं है; यह कोई अस्पष्ट या अनिश्चित वस्तु नहीं है। तुम्हें वैसे ही काम करना होता है जैसे तुम किसी प्रयोगशालामें करते हो। तुम्हें क्रिया और प्रतिक्रियाके नियमोंको सीखना होता है और उनका प्रयोग करना होता है। बस बात यही है कि तुम्हें इसे सिखानेवाले लोग बहुत नहीं मिलेंगे और फिर यह खतरेसे खाली भी नहीं है। इस क्षेत्रमें भी ऐसे मिश्रण हैं जो उतने ही विस्फोटक होते हैं जितना कि कोई भी रासायनिक मिश्रण हो सकता है।

परंतु फिर भी यह एक ऐसी चीज है जिसे सीखा जा सकता है। परंतु उसके लिये तुम्हारे अंदर योग्यता होनी चाहिये। अगर वह शक्ति तुम्हारे अंदर निहित हो तो तुम उसे अभ्यासके द्वारा विकसित कर सकते हो; परंतु तुममें वह शक्ति यदि न हो तो तुम ५० वर्षोंतक कोशिश कर सकते हो और उसका फल कुछ भी न होगा। प्रत्येक व्यक्तिको गुह्य शक्ति नहीं प्राप्त हो सकती; यह तो वैसी ही बात होगी जैसे तुम कहो कि संसारका हरएक आदमी संगीतज्ञ या कलाकार या कवि हो सकता है। ऐसे लोग हैं जो हो सकते हैं और ऐसे लोग भी हैं जो नहीं हो सकते। साधारण-तया, यदि इस विषयमें तुम्हारी रुचि हो, अवश्य ही यदि वह केवल निरर्थक उत्सुकता ही न हो तो यह इस बातका चिह्न है कि तुममें वह क्षमता है। तब तुम प्रयत्न करो। परंतु, जैसा कि मेरा कहना है, इसे बहुत सतर्कताके साथ करना चाहिये।

अब, उदाहरणार्थ, कोई आदमी जब शरीरसे बाहर जाता है—

इस व्यापारके विषयमें मैं तुम्हें बहुत बार बतला चुकी हूं — यदि थोड़ी-सी मात्रामें भी ऐसा हो तो भी, यदि महज मानसिक रूपमें ही हो तो भी — तब जो कुछ बाहर जाता है वह चेतनाका एक भाग होता है जो शरीरकी सामान्य क्रियाओंको परिचालित करता है, जो कुछ रह जाता है वह वह अंश होता है जो यंत्रवत् कार्य करनेवाला होता है, सहज-स्वाभाविक रूपसे, अनिच्छापूर्वक क्रियाएं उत्पन्न करता है, जैसे, रक्त-संचालन, रस-स्रवण इत्यादि, फिर अन्य प्रकारकी स्नायविक या यंत्रवत्-चालित चिंतन क्रियाएं आदि; यह क्षेत्र अब सचेतन चिंतनशील अंशके वशमें नहीं होता, अब, तुम्हारे चारों ओरके वायुमंडलमें बराबर ही छोटी-छोटी सत्ताओंकी एक बहुत बड़ी संख्या विद्यमान रहती है, अक्सर वे बहुत छोटी होती हैं और वे साधारणतया मृत मनुष्यकी सत्ताके टूटे-फूटे अंशसे निर्मित होती हैं। वे जीवाणुओंकी, प्राणसत्ताके जीवाणुओंकी जैसी होती हैं। उनका अपना आकार होता है और वे देखी जा सकती हैं तथा उन्हें अपने ढंगकी एक इच्छा भी होती है। तुम भले ही यह न कहो कि सर्वदा दुष्ट ही होती हैं पर वे दुष्टतासे भरी होती हैं, अर्थात् वे मनुष्योंको हानि पहुंचाकर अपना मन बहलाना पसंद करती हैं। ज्योंही वे देखती हैं कि कोई आदमी पर्याप्त रूपमें सुरक्षित नहीं है त्योंही वे भीतर घुस आती हैं और उसकी यंत्रवत् चालित मानस-प्रकृतिपर अपना अधिकार जमा लेती हैं तथा सब प्रकारकी अप्रिय घटनाएं उत्पन्न करती हैं — जैसे, दुःस्वप्न, नाना प्रकारके शारीरिक उपद्रव — तुम्हें ऐसा लगता है मानो तुम्हारा गला रुंध गया हो, तुम अपनी जीभ काटते या निगलते हो तथा इससे भी कहीं अधिक खराब चीजें अनुभूत होती हैं। जब तुम समाधिमें प्रवेश करना चाहो, शरीरसे बाहर निकलनेका अनुभव लेना चाहे, तब तुम्हारी

बगलमें अवश्य ही कोई आदमी होना चाहिये जो केवल तुम्हारे स्थूल शरीरकी ही निगरानी न करे बल्कि प्राणिक सत्ताओंको स्नायु-केंद्रोंपर अधिकार जमानेसे भी रोके, क्योंकि मैं कह चुकी हूं कि उस अवस्थामें उन स्नायुकेंद्रोंपर सचेतन बुद्धिका कोई अधिकार और संरक्षण नहीं रहता। फिर उससे भी बड़ा एक खतरा है। जब कोई आदमी कम या अधिक ठोस या भौतिक रूपमें शरीरसे बाहर चला जाता है और शरीरके साथ केवल एक पतला और दुर्बल संपर्क बनाये रखता है — मानो ज्योतिका एक धागा हो — तो संपर्कके इस धागेकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये, अन्यथा विरोधी सत्ताओंका इसपर आक्रमण हो सकता है और वे इसे काट सकती हैं; यदि यह कट जाय तो फिर मनुष्य शरीरमें वापस नहीं आ सकता, और इसका अर्थ होता है मृत्यु।

इन सारी बातोंका तात्पर्य यह है कि गुह्य विद्या कोई हंसी-ठट्ठा या महज खिलवाड़की चीज नहीं है, तुम सिर्फ अपना मन बहलानेके लिये इसका अनुसरण नहीं कर सकते। इसे ठीक उसी तरह करना चाहिये जैसे इसे करना उचित है, अर्थात् समुचित अवस्थाओंमें तथा बहुत बड़ी सावधानीके साथ। एक चीज जो अत्यंत आवश्यक है, वह है, मैं फिर एक बार दुहरा दूं, संपूर्ण रूपसे निर्भय हो जाना। यदि तुम अपने स्वप्नोंमें भयावह दृश्योंको देखो और भयभीत हो जाओ तो तुम्हें गुह्य विद्यासे दूर ही रहना चाहिये। यदि, इसके विपरीत, तुम अत्यंत भयानक संकटोंके सामने भी पूर्णतः शांत-स्थिर बने रह सको और उन्हें केवल तमाशा समझकर प्रसन्न होओ, यदि तुम ऐसी परिस्थितियोंको निरापद और सफल रूपमें संभाल सको तो इससे यह सूचित होगा कि तुममें कुछ क्षमता है और तब तुम गंभीरतापूर्वक प्रयत्न कर सकते हो। ऐसे

लोग होते हैं जो अपनी नींदमें सच्चे लड़ाके होते हैं; यदि किसी शत्रुसे उनकी मुलाकात हो जाती है तो वे उसका सामना कर सकते हैं। वे केवल अपनी रक्षा ही नहीं कर सकते, बल्कि आक्रमण कर सकते और विजयी हो सकते हैं।

ध्यान तथा कतिपय प्रश्न

मैं ध्यान करनेमें असमर्थ क्यों हूं?

क्योंकि तुमने ध्यान करना नहीं सीखा है। हठात् एक ख्याल आ सवार होता है और तुम कहते हो, "अब मैं बैठूंगा और ध्यान करूंगा।" परंतु पैरपर पैर, हाथपर हाथ रखकर और आंखें बंद कर बैठ जाना ही ध्यान करना नहीं कहलाता। तुम्हें यह सीखना होगा कि ध्यान कैसे किया जाता है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि तुम गणित करना या पियानो बजाना सीखते हो। ध्यान करनेकी सुनिश्चित पद्धतियां हैं जिन्हें सभी युगों और देशोंके सभी गुरुओंने प्रदान की है। इस विषयमें कितने ही नियम-कानून हैं। इस विषयमें नाना प्रकारकी शिक्षाएं दी गयी हैं, जैसे मनको अचंचल बनाये रखना चाहिये, निश्चल-नीरव बने रहना चाहिये और कुछ न सोचना चाहिये, अपने सभी विचारोंको एकत्रित कर उन्हें एक स्थानपर केंद्रित करना चाहिये आदि-आदि। तुम्हें यह सिखाया गया है कि तुम्हें कैसे उठना, बैठना, चलना और खाना चाहिये : तुम्हें वह तरीका और वह नियम अब याद नहीं, क्योंकि जब तुम बहुत छोटे थे तब

तुमने उन्हें सीखा था। उसी तरह यदि तुम्हारे बचपनमें ही तुम्हें यह सिखा दिया गया होता कि ध्यान कैसे किया जाता है तो आज उसे करना तुम्हें इतना कठिन न प्रतीत होता। दुर्भाग्यवश तुम्हें यह नहीं सिखाया गया था। उस तरहकी चीजें तुम्हें नहीं सिखायी गयी थीं। तुम्हें यह भी नहीं सिखाया गया है कि तुम्हें कैसे सोना चाहिये। तुम समझते हो कि बिछौनेपर जाकर किसी प्रकार लेट जाना ही सोनेका तरीका है। बिलकुल नहीं। तुम्हें ठीक उसी तरह सोनेका तरीका भी सीखना होगा जिस तरह चलने या खानेका तरीका तुम सीखते हो। तुम कितनी ही चीजें नहीं सीखते, तुम्हें नहीं सिखायी जातीं। जैसे-जैसे तुम्हारी उम्र बढ़ती है वैसे-वैसे धीरे-धीरे, काफी परिश्रमके साथ, नाना प्रकारके दुःखदायी अनुभवों तथा दुःखकष्ट और भूल-भ्रांतिमेंसे गुजरते हुए अंतमें तुम कुछ मौलिक बातोंको सीख पाते हो। और जब तुम बूढ़े हो जाते हो, तुम्हारे बाल सफेद हो जाते हैं तब तुम देखते हो कि तुम कुछ चीजें सीखना आरंभ कर रहे हो, जब कि वास्तवमें उसका समय निकल चुका है। उसके बदले यदि तुम्हारे मातापिताने, तुम्हारा लालन-पालन करने-वाले लोगोंने तुम्हें यह सिखानेका कष्ट उठाया होता कि तुम्हें क्या करना है, उसे अच्छे रूपमें करना है — अच्छे रूपमें कार्य करना है, अच्छे रूपमें विचार करना है, उच्छे रूपमें अनुभव करना है, सब ठीक-ठीक पद्धतिसे करना है — तब तुम उन सब भूलोंसे बच जाते जिन्हें तुम सारे जीवन करते आ रहे हो। जब तुम बीमार पड़ जाते हो, जब तुम थक जाते और निःशक्त हो जाते हो तब तुम चकित हो उठते हो। क्योंकि तुम उस विषयमें कुछ भी नहीं जानते। कोई चीज सीखनेके लिये, यहांतक कि अत्यंत आरंभिक चीजोंको भी, जैसे साफ-सुथरा रहना, सीखनेके लिये वर्षों समयकी आवश्यकता होती है।

जिस तरह मनुष्यको रहना चाहिये उस तरह, समुचित ढंगसे जीवन यापन करना बड़ी कठिन कला है। इसके लिये अध्ययन करनेकी, अभ्यास करनेकी आवश्यकता होती है। महज तुम अपने शरीरको स्वस्थ रखनेकी, मनको शांत तथा हृदयको सदिच्छासंपन्न बनाये रखनेकी चेष्टा करो—सुन्दर जीवनका आधार स्थापित करने-के लिये ये कुछ-एक अनिवार्य चीजें हैं; तुम देखोगे कि ऐसा करना आसान नहीं है।

क्या अध्ययनके अलावा किसी प्रकारका कार्य करना भी हमारे लिये आवश्यक है?

यह तुम्हारे ऊपर, तुम्हारे लक्ष्यके ऊपर निर्भर करता है। यदि तुम साधना करना चाहते हो तो तुम्हें स्वभावतः कम-से-कम थोड़ा-सा समय किसी ऐसे काममें लगाना चाहिये जो स्वार्थपूर्ण न हो, अर्थात्, जो स्वयं अपने लिये न किया गया हो। अध्ययन करना बहुत अच्छा है, बहुत आवश्यक है, यहांतक कि अनिवार्य है; परंतु यह (निःस्वार्थ रूपसे कार्य करना) भी ठीक उन्हीं चीजोंमेंसे एक चीज है जिनकी चर्चा मैंने अभी कुछ क्षण पहले की थी और जिन्हें तुम्हें अपनी छोटी उम्रमें ही सीखना चाहिये, और इसलिये इसे करना उस समय कठिन हो जाता है जब कि तुम बड़े हो जाते हो। निश्चय ही एक ऐसी उम्र आ सकती है जब तुम अपनी बुनियादी शिक्षाएं पूरी कर चुके होगे और जब तुम्हें साधना करनेकी प्रवृत्ति होगी। तब तुम्हें किसी ऐसे कार्यको अपनाना होगा जो बिलकुल ही व्यक्तिगत न हो। उस समय तुम्हें कोई निःस्वार्थपूर्ण काम करना होगा, जिसके साथ तुम्हारा अपना कोई संबंध न हो। यदि तुम केवल अपने स्वार्थमें ही लगे रहो तो तुम अपने-आपको एक प्रकारके

आवरणसे ढक दोगे और विश्वशक्तियोंकी ओर उन्मुक्त नहीं रहोगे। एक स्वार्थहीन गतिविधि, एक निःस्वार्थ कार्य, चाहे वह जितना भी छोटा क्यों हो, तुम्हारे तुच्छ अहंसे भिन्न किसी चीजके लिये दरवाजा खोल देता है। सामान्यतया तुम अपने आवरणके अंदर आबद्ध रहते हो और तुम उसी तरहके अन्य आवरणोंसे ढंकी हुई सत्ताओंके विषयमें केवल तभी अवगत होते हो जब तुम उनके साथ टकराते हो। परंतु सबके अंदर परिव्याप्त एक दिव्य शक्तिके विषयमें, वस्तुओं और सत्ताओंकी पारस्परिक निर्भरशीलताके बारेमें सज्ञान होना बिलकुल दूसरी ही बात है: यह साधनाका अनिवार्य आधार है।

परंतु, क्या हम भगवान्‌के लिये, भागवत कर्म करनेके उद्देश्यसे अपने-आपको तैयार करनेके लिये अध्ययन नहीं कर सकते?

कर सकते हो। परंतु उसके लिये एकदम दूसरे ही मनोभावकी आवश्यकता होती है। तुम्हें बिलकुल दूसरी ही भावनाके साथ अध्ययन करना होगा। सर्वप्रथम, ऐसा कोई विषय नहीं होगा जिसे तुम पसंद करो, ऐसा भी कोई विषय नहीं होगा जिसे तुम नापसंद करो, न तो ऐसा कोई क्लास होगा जिससे तुम उकता जाओ, न ऐसा ही क्लास होगा जिसमें तुम्हारा मन लगे। न तो कोई कठिन पाठ होगा, न कोई आसान; न तो कोई ऐसा शिक्षक होगा जो प्रिय हो, न दूसरा जो अप्रिय हो। ऐसी सभी पसंदगियां और नापसंदगियां, पूर्वनिर्धारित मत और पक्षपात दूर हो जायेंगे। उस समय तुम एक ऐसी स्थितिमें आ जाओगे जिसमें तुम अपने पास आनेवाली प्रत्येक चीजसे शिक्षा लेना आरंभ कर दोगे, प्रत्येक वस्तु ही एक अनुभव, एक ज्ञानका सुअवसर बन जायेगी; उस समय सभी चीजें तुम्हें भागवत कार्यके लिये तैयार करेंगी, प्रत्येक चीज ही तुम्हें

रुचिकर प्रतीत होगी। यदि तुम इस भावके साथ अध्ययन करो तो फिर यह बिलकुल ठीक है।

क्या यह बात है कि यहां इतना अधिक धन व्यर्थमें खर्च होने दिया जाता है? जिन लोगोंको किसी कामका भार दिया गया है वे अपने ख्यालके अनुसार बेरोकटोक खर्च करते हुए प्रतीत होते हैं!

धन ही एकमात्र चीज नहीं है जिसका अपव्यय हो रहा है। शक्तिका, चेतनाका अपव्यय धनकी अपेक्षा हजारोंगुना अधिक, अनंतगुना अधिक हो रहा है। ऐसा एक भी क्षण नहीं जब अपव्यय न होता हो, कभी-कभी तो कहीं अधिक बुरी बातें घटित हो जाती हैं। एक ऐसा अभ्यास लोगोंमें पड़ गया है, मैं समझती हूं ऐसा अनजानमें ही होता है, कि लोग उतनी अधिक शक्ति, उतनी अधिक चेतना अपने अंदर ले लेते हैं जितना अधिक लेनेकी क्षमता उनमें होती है और फिर वे उसका उपयोग अपनी व्यक्तिगत तृप्तिके लिये करते हैं। यह एक ऐसी चीज है जो प्रत्येक मिनट घटित हो रही है। अगर यह सब शक्ति, यह सब चेतना जो निरंतर तुम्हारे ऊपर ढाली जा रही है, पूरीकी पूरी समुचित उद्देश्यके लिये, अर्थात् भगवान्के कार्यके लिये, भागवत कार्यकी तैयारी करनेके लिये व्यवहृत होती तो हम अपने रास्तेपर अबतक बहुत दूर आगे चले गये होते, अभी हम जहां हैं उससे बहुत अधिक आगे निकल गये होते। परंतु दुर्भाग्यवश प्रत्येक आदमी, जानबूझकर नहीं तो कम-से-कम सहज-प्रेरणावश, इस दिव्य दानका यथासंभव अधिकसे अधिक शोषण करता है और स्वार्थपूर्ण उद्देश्योंकी पूर्त्तिमें इसका कुव्यवहार करता है।

कौन इस बातकी चिंता करता है? — कि यह दिव्य शक्ति यहां मौजूद है जो धनशक्तिसे अनंततः महान्, अनंततः अधिक बहुमूल्य

है, यह शक्ति यहां है और ज्ञानपूर्वक, नित्यनिरंतर, अंतहीन धैर्य, और अध्यवसायके साथ, मात्र एक ही उद्देश्यको, भागवत कार्यको पूरा करनेके लक्ष्यको ध्यानमें रखकर दी जा रही है — मैं कहती हूं, कौन इसका दुर्व्यवहार न करनेकी बात सोचता है? कौन इसे याद रखता है कि सब लोगोंका पवित्र कर्तव्य है प्रगति करना, अपने-आपको इस प्रकार तैयार करना कि वे अच्छे रूपमें समझ सकें और अधिक अच्छा जीवन बिता सकें? वास्तवमें तुम दिव्य शक्ति और दिव्य चेतनाके कारण ही जीवित हो और यही कारण है कि तुम उनके द्वारा जीवन यापन करनेमें समर्थ होते हो, उन्हें अपने निजी काममें खर्च करते हो। जब लोग देखते हैं कि कुछ हजार रुपये नष्ट हो गये तो वे स्तंभित हो जाते हैं, परंतु वे यह नहीं देखते कि चेतना और ज्ञानकी एक समूची बाढ़को ही उसकी असली दिशा-से अलग धकेल दिया जा रहा है।

अगर कोई मनष्य पृथ्वीपर कोई भागवत कार्य करना चाहे तो उसे यहां मनों धैर्य और सहनशीलता लेकर आना चाहिये, उसे तब-तक शाश्वततामें निवास करने और प्रतीक्षा करनेमें समर्थ होना चाहिये जबतक कि प्रत्येक आदमीमें चेतना, सच्ची ईमानदारीकी चेतना न जागृत हो जाय।

ध्यान ही ध्यान

कुछ लोग जब ध्यान करने बैठते हैं तब वे समझते हैं कि वे किसी अद्‌भुत स्थितिमें चले जाते हैं और उन्हें इस बातका बड़ा गर्व होता है। परंतु अधिकांश समय वे ध्यानमें क्या करते हैं? महज

अपने विचारोंको ढीला छोड़ देते हैं; यह एक प्रकारका बहुरूपदर्शक यंत्र (Kaleidoscope) होता है जो उनके मतिष्कमें चलता रहता है। परंतु कुछ ऐसे लोग होते हैं जो कुछ क्षण बिना किसी विचारके रह सकते हैं; परंतु यदि उन्हें एकाएक उस समय किसी कारणवश पुकारा जाय तो आग-बबूला होकर जगते हैं और कहते हैं कि एक अच्छा-सा ध्यान नष्ट हो गया तथा उसके लिये वे सारे जगत्के विरुद्ध बड़बड़ाते और नाराज होते हैं। उसी तरह कुछ थोड़ेसे लोग ऐसे होते हैं जो जानते हैं कि ध्यान कैसे किया जाता हैं, वे भगवान्के साथ एक प्रकारका एकत्व प्राप्त कर लेते हैं। निश्चय ही यह बहुत अच्छा है। कुछ दूसरे लोग ऐसे होते हैं जो एक विचारधाराका एक हदतक अनुसरण करते हैं; यहांतक कि उस विचारके केंद्रीय बिंदुतक पहुंच जाते हैं। यह भी बहुत अच्छी बात है। पर अधिकांश लोग अर्ध-निद्राकी अवस्थामें चले जाते हैं, अर्थात्, बहुत तामसिक स्थितिको प्राप्त हो जाते हैं। मन उनका जड़ हो जाता है, अभीप्सा निश्चेष्ट हो जाती है, सारी सत्ता ही जड़ बन जाती है। वे उस अवस्थामें लगातार कई घंटोंतक पड़े रह सकते हैं। हां, जड़ताकी अपेक्षा अधिक स्थायी दूसरी कोई चीज नहीं है। और जब वे उससे बाहर निकलते हैं तब यह समझते हैं कि हमने कोई बड़ी महान् वस्तु प्राप्त कर ली है। परंतु वे महज अचेतनतामें ही जा पड़े थे।

हां, कुछ लोग जानते हैं कि ध्यान कैसे किया जाता है। परंतु हम यदि यह मान भी लें कि तुम यह जानते हो कि दिव्य चेतनामें कैसे प्रवेश किया जाता है तो भी उस अनुभवका तुम्हारे बाहरी जीवनपर भी कुछ प्रभाव अवश्य पड़ना चाहिये — स्वभावतः ही यह बात संबंधित व्यक्तियोंके अनुसार अलग-अलग होगी। कुछ

लोग ऐसे होते हैं जो स्पष्टतः ही अपने-आपको दो भागोंमें काट डालते हैं। ये लोग, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, जब ध्यानावस्थामें प्रवेश करते हैं तब इन्हें अनुभूतियां और बहुत सुन्दर अनुभूतियां होती हैं या ये समझते हैं कि हमें अनुभूतियां हुई हैं। परंतु जब वे वापस आते हैं और कार्य करना आरंभ करते हैं तब वे अत्यंत सामान्य मनुष्य बन जाते हैं, उनमें अत्यंत साधारण प्रतिक्रियाएं होती हैं, जो काम नहीं करने चाहियें वैसे सब प्रकारके कार्य करते हैं। वे केवल अपनी ही चिंता करते हैं, अपने ही जीवनको व्यवस्थित करनेमें संलग्न रहते हैं, दूसरोंके लिये कोई बात उनके मनमें नहीं उठती, वे सोचते ही नहीं कि कोई आदमी संसारके लिये भी उपयोगी हो सकता है या नहीं। और फिर भी ध्यानके समय किसी उच्चतर और गभीर-तर चेतना तथा सद्वस्तुके साथ उनका संपर्क स्थापित होता है। यही कारण है कि जिन लोगोंने देखा कि मानव-प्रकृतिको बदलना कठिन है उन्होंने इसे असंभव घोषित कर दिया और यह सलाह दी कि ऐसी अवस्थामें एकमात्र कर्तव्य है संसारका त्याग कर उससे दूर भाग जाना। स्वभावतः ही यदि सब लोग भाग जाते तो फिर कोई जगत् ही न रह जाता। पर, सौभाग्य या दुर्भाग्यवश, जगत्का अस्तित्व व्यक्तियोंकी इच्छापर निर्भर नहीं करता : जगत्की सृष्टिमें उनका हाथ ही नहीं था और वे जानते ही नहीं कि यह कैसे उत्पन्न हुआ। क्या महज इसी कारण जगत्का अस्तित्व लोप पा जायगा कि कुछ लोग संसारसे दूर भाग जाते हैं—उनके लिये, संभवतः, पर दूसरोंके लिये? यद्यपि मैं निश्चित रूपसे नहीं कह सकती कि वे लोग भी वास्तवमें भागनेमें सफल होते ही हैं। पर जो हो, मैं नहीं विश्वास करती कि तुम ध्यानके द्वारा अपना रूपांतर कर सकते हो। परंतु जब कोई काम तुम्हारे सामने हो और तुम उसे यथासंभव अच्छे-

से-अच्छे ढंगसे करो, फिर उसे करते हुए इस बातका ख्याल रखो कि तुम भगवान्‌को भूल न जाओ तथा तुम अपने-आपको उनके प्रति समर्पित कर दो जिसमें कि वह तुम्हारी सत्ताको परिवर्तित कर दें, तुम्हारी प्रतिक्रियाओंको किसी सुन्दर और ज्योतिर्मय चीजमें परिणत कर दें, तो निश्चय ही भगवान् तुम्हें रूपांतरित कर देंगे।

जो लोग सब कुछ छोड़कर कम या अधिक सूने ध्यानकी अवस्थामें बैठ जाते हैं, ऐसे लोगोंको मैंने कभी कोई उन्नति करते हुए नहीं देखा है; हर हालतमें उनकी उन्नति बहुत सामान्य होती है। इसके विपरीत, मैंने ऐसे लोगोंको देखा है जो संसारमें परिवर्तन लानेके उद्देश्यसे कार्य करनेके लिये उत्साहसे भरे होते हैं, जो पूर्ण रूपसे, विना कुछ बचाये, अपने-आपको उस कार्यमें लगा देते हैं; वे व्यक्तिगत मुक्तिकी कोई भावना मनमें न रख अपने-आपको समर्पित कर देते हैं। हां, ऐसे ही लोगोंको मैंने अत्यंत अद्‌भुत उन्नति करते हुए देखा है। दूसरी ओर, मैंने बहुतसे लोगोंको मठोंमें रहते हुए देखा है; परंतु वे इस योग्य नहीं कि उनकी चर्चा की जाय। सच पूछ तो तुम संसारसे दूर भागकर इसको नहीं बदल सकते; केवल इसपर निरंतर दृढ़ताके साथ कार्य करके ही इसमें परिवर्तन ला सकते हो।

क्या इसका मतलब यह है कि ध्यानका बिलकुल कोई उपयोग ही नहीं?

तुम्हारे लिये जितना आवश्यक है उतना ध्यान स्वयं तुम्हारे पास आयेगा। जब वह आता है तब वह तुम्हें अभिभूत कर देता है; उस समय तुम्हें उसमें बाधा नहीं डालनी चाहिये। उस समय तुम बैठ जाते हो और अपने भीतर पैठ जाते हो, अपनेको भीतरकी

ओर खींच लेते हो और आवश्यक आंतरिक प्रगति कर लेते हो। जब वह पूरा कर लेते हो तब तुम बाहर आते हो और फिर अपना काम आरंभ करते हो। परंतु सबसे बड़ी बात यह है कि तुम फूल मत उठो। जो लोग यह समझते हैं कि हम असाधारण जीव हैं और हमें अधिक योग्यता है, वे अपनी उन्नतिमें बाधा उपस्थित करते हैं। विनम्रताकी बड़ी आवश्यकता है, इसपर मुझे जोर देना ही होगा। प्रायः ही लोग इसके विषयमें बहुत-कुछ कहते आ रहे हैं, पर वे इसे अच्छी तरह समझते नहीं। विनम्र होओ, पर होओ यथार्थ रूपमें। यदि तुम मिथ्याभिमानरूपी इस व्यर्थकी घासको महज उखाड़ फेंकते! कितना कठिन, हां, कितना दुष्कर है यह! तुम किसी-न-किसी जगह गुप्त रूपसे उत्फुल्ल हुए बिना, छिपी हुई आत्म-संतुष्टिका पोषण किये बिना कोई एक भी अच्छा कार्य नहीं कर सकते, जरा भी उन्नति नहीं कर सकते। अपने अहंकारके उस कठोर केंद्रको चूर्ण-विचूर्ण करनेके लिये तुम्हें हथौड़ेसे प्रहार करना होगा। इस विषैली जड़ीको नष्ट करनेके लिये तुम्हें सारे जीवन कार्य करना होगा। तुम समझते हो कि तुमने उसे कर लिया है और अंतमें उसे कर चुकनेकी भावनासे इतने अधिक संतुष्ट हो उठते हो!

प्रार्थना और अभीप्सा

नाना प्रकारकी प्रार्थनाएं होती हैं। एक प्रार्थना होती है बाहरी और भौतिक, महज शब्दोंको जबानी रट लिया जाता है और उन्हें बिना समझे यंत्रकी तरह दुहराया जाता है। इससे बहुत अधिक लाभ नहीं होता। पर, सामान्यतया, इसका एक परिणाम होता है,

यह तुम्हें शांत, अचंचल बना देता है। यदि तुम कुछ शब्दों या स्वरोंको कुछ दिनोंतक लगातार दुहराते रहो तो अंतमें वह तुम्हें एक प्रकारकी शांतिकी अवस्थामें पहुंचा देता है। एक दूसरे प्रकारकी प्रार्थना है जो किसी इच्छाकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है; तुम कोई विशेष वस्तु चाहते हो और उसे तुम स्पष्ट रूपमें प्रकट करते हो। तुम किसी चीजके लिये या किसी अवस्थाके लिये प्रार्थना कर सकते हो, तुम किसी व्यक्तिके लिये या स्वयं अपने लिये भी प्रार्थना कर सकते हो। फिर प्रार्थनाका एक और भी प्रकार है जिसमें प्रार्थना अभीप्साकी सीमापर पहुंच जाती है और वहां दोनों मिल जाती हैं; यह एक सजीव अनुभवका अपने-आप मूर्तिमान् होना है; यह प्रार्थना तुम्हारी सत्ताकी गहराईसे उद्‌गत होती है, यह अपने जीवनमें उतारी हुई किसी आंतरिक चीजका उद्‌गार होती है; यह अनुभूतिके लिये कृतज्ञता प्रकट करना चाहती है, उसे जारी रखनेके लिये विनय करती है या कोई व्याख्या चाहती है। उस समय यह, जैसा कि मैंने कहा था, प्रायः एक अभीप्सा होती है। पर यह कोई आवश्यक नहीं कि अभीप्सा शब्दोंका रूप ले ही; यह अगर शब्दोंका व्यवहार करती भी है तो उन्हें एक प्रकारके आह्वानका आकार प्रदान करती है। इस तरह तुम एक विशिष्ट अवस्थामें रहनेकी इच्छा करते हो। तुमने, उदाहरणार्थ, अपने अंदर एक ऐसी चीज देखी है जो तुम्हारे आदर्शके साथ मेल नहीं खाती, जो एक अंधकार या अज्ञानकी क्रिया है या यहांतक कि एक प्रकारकी अशुभ इच्छा है। तुम उसे बदली हुई देखना चाहते हो। तुम इस बातको शब्दोंमें प्रकट नहीं करते, बल्कि यह तुम्हारे अंदर एक लौकी भांति, स्वयं इस अनुभवकी ही सच्ची पुष्पांजलिके रूपमें उठती है जो विशाल और महान् होनेकी, अधिक स्पष्ट और सुनिश्चित होनेकी कोशिश करती है। यह ठीक

है कि यदि कोई उस अनुभवको स्मरण करने और लिख डालनेकी चेष्टा करे तो ये सब बातें शब्दोंमें व्यक्त की जा सकती हैं। परंतु स्वयं वह अनुभव, वह अभीप्सा, जैसा कि मैंने कहा है, एक लौकी जैसी होती है जो ऊपरकी ओर उठती है और अपने अंदर ठीक उस चीजको धारण किये रहती है जिसे वह मांगती है। मैं कहती हूं कि 'मांगती हैं', परंतु वह क्रिया बिलकुल ही वैसी नहीं होती जैसी कि किसी कामनाकी होती है; वह सचमुचमें एक लौ होती है, वह शुद्धिकारक संकल्पकी लौ होती है जो अपने केंद्रमें उस लक्ष्यको लिये होती है जिसे वह चरितार्थ करना चाहती है। अपने किसी दोषको खोज निकालना तुम्हें उसे अधिक प्रगतिका, महत्तर आत्मानुशासनका, भगवान्‌की ओर और अधिक आरोहण करनेका एक अवसर बनानेकी प्रेरणा प्रदान करता है। यह तुम्हारे भावी जीवनके लिये एक दरवाजा खोल देता है जिसे तुम अधिक स्पष्ट, अधिक सच्चा और अधिक तीव्र बनाना चाहते हो; यह सब तुम्हारे अंदर एक घनीभूत शक्तिके रूपमें एकत्रित होता है और तुम्हें ऊपर आरोहण करनेके लिये जोरों फेंक देता है। इसे शब्दोंमें व्यक्त करनेकी आवश्यकता नहीं होती। वास्तवमें यह एक लौ होती है जो ऊपरकी ओर जलती रहती है। यही सच्ची अभीप्सा है। साधारणतया प्रार्थना बहुत अधिक बाह्य वस्तु होती है; उसका संबंध किसी अत्यंत सुनिश्चित लक्ष्यके साथ होता है। उसका सदा एक ही रूप होता है; क्योंकि स्वयं वह रूप ही यह बताता है कि प्रार्थना क्या चीज है। तुम्हें कोई अभीप्सा हो सकती है और तुम उसे एक प्रार्थनामें रूपांतरित कर सकते हो, पर स्वयं वह अभीप्सा उस प्रार्थनाके परेकी चीज है। वह एक ऐसी चीज है जो बहुत अधिक आंतरिक होती है, अधिकतम आत्म-विस्मृतिपूर्ण होती है, जो कुछ वह होना

या करना चाहती है बस उसी उद्देश्यमें, प्रायः उसके साथ एकाकार होकर रहती है। प्रार्थना बहुत ऊंचे दर्जेकी हो सकती है। तुम्हारी किसी विशेष कामनाकी परिपूर्त्तिके लिये एक अनुरोध होनेके बदले भगवान्ने जो कुछ तुम्हारे लिये किया है या वह कर रहे हैं उसके लिये वह तुम्हारी कृतज्ञता और विनम्रताको व्यक्त कर सकती है। तुम अपने ही तुच्छ व्यक्तित्व और उसके अहंकारपूर्ण हितोंमें ही संलग्न नहीं हो, तुम अपने अंदर और जगत्में भगवान्के तरीकोंकी कामना करते हो। यह तुम्हें अभीप्साके किनारे पहुंचा देता है। क्योंकि अभीप्साके भी अनेक स्तर हैं और यह अनेक स्तरोंपर प्रकट की जाती है। परंतु अभीप्साका मूल केंद्र चैत्य पुरुषमें है, वहींपर वह अपने शुद्धतम रूपमें पायी जाती है, क्योंकि वहींपर उसका मूल और उद्गम-स्थान है। प्रार्थनाएं सत्ताके दूसरे, निम्नतर या गौण स्तरोंसे आती हैं। कहनेका तात्पर्य, भौतिक या स्थूल प्रार्थनाएं होती हैं जो भौतिक या स्थूल वस्तुएं मांगती हैं, फिर प्राणिक प्रार्थनाएं, मानसिक प्रार्थनाएं होती हैं; फिर चैत्य प्रार्थनाएं और आध्यात्मिक प्रार्थनाएं भी होती हैं। इनमेंसे प्रत्येकका अपना अलग स्वरूप और अपना अलग मूल्य होता है। मैं फिर कहती हूं कि एक विशेष प्रकारकी प्रार्थना होती है जो अत्यंत स्वाभाविक और अत्यंत कामना-शून्य होती है, कहीं अधिक एक निवेदन या एक पुकारकी जैसी होती है, सामान्यतया यह स्वयं अपने लिये नहीं होती बल्कि कभी-कभी भगवान्के सामने दूसरोंके लिये पैरवी करनेकी जैसी कोई चीज होती है। ऐसी प्रार्थना परम शक्तिशाली होती है। मैंने अनगिनत बार ऐसी प्रार्थनाको बातकी बातमें अपना अभीप्सित परिणाम उत्पन्न करते हुए देखा है। इसका अर्थ है महान् श्रद्धा-विश्वास, महान् उत्साह, महान् सच्चाई और साथ ही हृदयकी महान् सरलता, ऐसी चीज जो

हिसाब नहीं लगाती, जो मोल-तोल या लेन-देन नहीं करती, पानेकी भावनाके साथ नहीं देती। अधिकांश प्रार्थनाएं निश्चित रूपसे देनेकी ही भावना रखकर की जाती हैं जिसमें कि मनुष्य पा सके। परंतु मैं एक अधिक विरल प्रकारकी प्रार्थनाकी बात कह रही थी और वैसी प्रार्थनाएं भी अवश्य अस्तित्व रखती हैं। उनमें एक प्रकारसे भगवान्‌के प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाती है, वे भगवान्‌के गुणों या कार्योंका बखान करनेवाले गीत या स्तोत्र होती हैं।

अतएव साररूपमें यह कहा जा सकता है कि प्रार्थना सर्वदा शब्दोंसे बनी होती है। उन शब्दोंकी रचना करते समय उनके रचयिताकी चेतनाकी जो अवस्था होती है उसीके अनुसार उन शब्दों-का मूल्य अलग-अलग होता है। परंतु प्रार्थना बराबर ही एक निर्मित वस्तु होती है। परंतु मनुष्य बिना रचना किये ही अभीप्सा कर सकता है। और फिर प्रार्थनाके लिये एक व्यक्तिकी आवश्यकता होती है जिससे मनुष्य प्रार्थना करता है। अवश्य ही एक विशेष श्रेणीके लोग भी होते हैं जो विश्वके विषयमें ऐसी कल्पना करते हैं जिसमें भगवान्‌के लिये कोई स्थान नहीं होता (जैसे फ्रांसके विख्यात वैज्ञानिक लाप्लास (Laplace)। ऐसे लोगोंके लिये अपनेसे श्रेष्ठतर किसी सत्ताका अस्तित्व स्वीकार करनेकी संभावना नहीं जिस-से वे प्रार्थना कर सकें या जिसकी ओर पथप्रदर्शन और सहायताके लिये ताक सकें। उनके लिये प्रार्थना करनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। परंतु ऐसे लोग भी, भले ही वे प्रार्थना न करें, अभीप्सा कर सकते हैं। वे भगवान्‌में विश्वास न करें, पर वे, उदाहरणके लिये, प्रगतिमें विश्वास कर सकते हैं। वे संसारके विषयमें यह कल्पना कर सकते हैं कि यह एक विकसनशील गतिधारा है, यह अधिकाधिक अच्छा बन रहा है, क्रमशः उन्नत हो रहा है, निरंतर

एक महत्तर परिपूर्णताकी ओर वर्द्धित हो रहा है। वे ऐसी प्रगतिको मांग सकते हैं, उसके लिये संकल्प और अभीप्सा कर सकते हैं; उन्हें भगवान्के लिये प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं। निःसंदेह, अभीप्सा-के लिये विश्वासकी आवश्यकता होती है, पर यह आवश्यक नहीं कि विश्वास साकार भगवान्में ही हो। परंतु प्रार्थना सदा ही एक व्यक्तिके प्रति निवेदित होती है, ऐसे व्यक्तिके प्रति जो उसे सुनता है और उसे मंजूर करता है। यहींपर उन दोनोंमें महान् विभेद है। बुद्धिशाली व्यक्ति अभीप्साको स्वीकार करते हैं; पर प्रार्थनाको वे निम्न कोटिकी चीज समझते हैं, नासमझ लोगोंके लिये ही उसे उप-युक्त मानते हैं। रहस्यवादी कहते हैं कि अभीप्सा करना एकदम ठीक है, पर तुम्हारी अभीप्सा यदि सुननेकी और पूरी करनेकी चीज है तब तुम्हें अवश्य प्रार्थना भी करनी चाहिये, तुम्हें जानना चाहिये कि कैसे प्रार्थना करनी चाहिये और किससे करनी चाहिये — और भगवान्के सिवा भला ऐसा दूसरा कौन है? अभीप्सा किसी व्यक्तिके प्रति करनेकी कोई आवश्यकता नहीं; अभीप्सा किसी व्यक्तिके प्रति नहीं की जाती बल्कि चेतनाकी किसी स्थिति, किसी ज्ञान, सिद्धिके प्रति की जाती है। प्रार्थना किसी व्यक्तिके संबंधको उसके साथ जोड़ देती है। प्रार्थना एक व्यक्तिगत चीज होती है और उसमें किसी व्यक्तिसे कोई ऐसी चीज मांगी जाती है जिसे केवल वही प्रदान कर सकता है।

पूजा और समर्पण

ये दोनों बिलकुल एक ही चीज नहीं हैं : बल्कि ये एक ही चीज-के दो रूप हैं। ये दोनों पूर्ण रूपसे चेतनाके एक ही स्तरसे संबंध नहीं रखते। उदाहरणार्थ, तुमने भगवान्‌की पूजाके रूपमें अपने संपूर्ण जीवनको निवेदित कर देनेका संकल्प कर लिया है। अब एकाएक कोई ऐसी चीज घटित होती है जो बहुत दुःखदायी है : तुम्हें उसके घटित होनेकी कोई आशा नहीं थी। अब तुम्हारे अंदर जो पहली क्रिया होती है वह है प्रतिक्रिया करने और उसका विरोध करनेकी। और फिर भी तुमने अपनेको पूजामें चढ़ा ही दिया है; परंतु तुम्हारे अंदरकी कोई एक चीज पलट जाती है। पर तुम यदि अपनी पूजाकी भावनापर दृढ़ हो तो तुम उस विरोध करनेवाले अंगको अपने हाथोंमें पकड़ लोगे और उसे भगवान्‌के सामने रखते हुए कहोगे, "जो तू चाहे वही हो।" परंतु, दूसरी ओर, आत्म-समर्पणमें एक ऐसी स्थायी निष्ठा होती है जो स्वाभाविक, सहज-स्फूरित होती है और जिसमें कोई प्रतिवाद-विरोधकी भावना नहीं होती। अगर कोई दुःखदायी या तुम्हारी आशाके विपरीत घटना हो भी जाती है तो तुम एक समान अविचलित और स्थिर बने रहते हो।

आरंभमें तुम साधारण रूपमें, मानो सिद्धांततः आत्मसमर्पण या आत्मदान करते हो; वह तुम्हारी आंतर सत्तामें होता है। परंतु उसे धीरे-धीरे अपनी बाहरी सत्तामें भी ले आना होगा, जीवनकी छोटी-मोटी सभी बातोंमें उसे क्रियान्वित करना होगा। यही कारण है कि कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। तुम कहते हो कि तुमने अपने-

आपको भगवान्‌के चरणोंमें अर्पण कर दिया है, तुमने दीर्घकालतक उसके लिये कार्य भी किया है, खूब कठिन परिश्रम किया है, बहुत अधिक समय और बहुत अधिक संकल्प खर्च किया है; हठात् तुम देखते हो कि तुम्हारी सारी गणना उलट-पलट गयी है, कोई अन्य चीज घटित हो रही है, किसी बातमें तुम सफल नहीं हुए हो। अतएव विद्रोहकी भावना उठ खड़ी होती है, तुम पीछे मुड़ जाते हो, इत्यादि-इत्यादि। परंतु अब तुम्हारा कर्तव्य यह है कि तुम अपने आत्मदानको फिर नये सिरेसे करो, अपनी निष्ठाको पुनः स्थापित करो। जब तुम्हारी निष्ठा पूर्ण हो जायगी, जब तुम प्रत्येक चीजमें, प्रत्येक कार्य-पद्धतिमें, सहज-स्वाभाविक रूपसे भागवत इच्छाको स्वीकार करने लगोगे, तब आयगा समर्पणका भाव, पूर्ण आज्ञाकारिताका भाव जो दोनों ही अवस्थाओंमें, चाहे चीजें इस रूपमें घटित हों या उस रूपमें, स्थिर, अचल और शांत होता है।

तुम पूछते हो कि आया अनजानमें तुम कोई भूल कर सकते हो या नहीं, जब तुम नहीं चाहते तब भी तुम कोई गलती कर सकते हो या नहीं। ऐसा संभव नहीं। अगर तुम पूर्ण रूपसे सच्चे हो तो तुम सर्वदा ही सचेतन रहोगे और अनजानमें आक्रांत नहीं हो सकते। वास्तवमें किसी-न-किसी रूप या मात्रामें सच्चाईका अभाव होता है और वही तुम्हारे भले या बुरे बोधको ढक देता है, मानो तुम्हें अचेतन बना देता है; तुम्हारी विवेक-शक्ति आच्छादित हो जाती है, क्योंकि तुम चाहते हो कि चीजें एक विशेष ढंगसे घटित हों अथवा तुम नहीं चाहते कि वे दूसरे ढंगसे घटित हों। इसके विपरीत, यदि तुम सरल होओ, यदि तुम दोनों तरीकोंके प्रति निष्पक्ष होओ और केवल भागवत इच्छाकी प्रतीक्षा करो तो तुम सर्वदा ही तुरत-फुरत यह देख सकोगे कि तुम्हारे अंदर कोई गलत चाल विद्यमान है या

उसके आनेकी संभावना है; तुम इसे खूब स्पष्ट रूपमें और ठीक-ठीक रूपमें जान जाते हो, क्योंकि तुम उसे सुधारनेके लिये तैयार रहते हो।

पूर्ण सच्चाई कोई भूल करना नहीं चाहती : वह भ्रममें रहनेके बदले सब कुछ त्याग देना पसंद करेगी। वह बड़ी ही सुनिश्चित क्रिया है पर वह बहुत ही सूक्ष्म क्रिया भी है। क्योंकि जब तुम कोई कार्य करते हो, यहांतक कि उचित कार्य करते हो तो वहां मन और प्राण विद्यमान रहते हैं और वे उसका लाभ उठाना चाहते हैं, एक लाभ, कम-से-कम व्यक्तिगत तुष्टिका लाभ, अपने विषयमें कोई अच्छी राय पाना चाहते हैं। अपने-आपको धोखा न देना बड़ा ही कठिन है।

शरीरकी समता – अंतरात्माकी समता

बाहरी सत्ताकी समताका मतलब है अच्छा स्वास्थ्य, गठा शरीर, सुसंयत स्नायुमंडल — जब कि तुम जरासे आघातसे भी विचलित नहीं होते, जब तुम स्थिर, अचंचल, शांत और सम बने रहते हो। उस अवस्थामें तुम अपने-आप ऊपरसे (अथवा, अपने चारों ओर विद्य-मान शक्तिसे) एक महान् शक्ति अपने अंदर ग्रहण कर सकते हो और फिर भी तुम्हारे अंदर कोई उथल-पुथल नहीं होगी। यदि तुममेंसे किसीने किसी समय ऐसी कोई शक्ति पायी होगी तो उसे अनुभवद्वारा यह पता चल गया होगा कि शरीरमें पूरा-पूरा अच्छा स्वास्थ्य हुए बिना कोई आदमी उस शक्तिको न तो अपने अंदर ले सकता और न बनाये रख सकता है। तुम स्थिर-शांत नहीं बने रह सकते, तुम चंचल हो जाओगे, तुम इधर-उधर छटपटाओगे, बातें

करोगे, चिल्लाओगे, रोओगे, उछल-कूद मचाओगे या नाचोगे, और यह सब केवल उस शक्तिको निकाल फेंकनेके लिये करोगे जिसे धारण करनेमें तुम असमर्थ हो। जो कुछ अपने अंदर एकत्र करना और हजम करना तुम्हारे लिये संभव नहीं है उसे तुम चारों ओर बिखेर देते हो। शक्तिको अपने अंदर एकत्र करने और हजम करनेके योग्य बनानेके लिये शरीर और स्नायु-मंडलको शांत-स्थिर और सशक्त होना चाहिये।

अंतरात्माकी समता अलग चीज है; यह आंतरिक चीज है, भौतिक नहीं। यह वह शक्ति है जिससे अच्छी या बुरी चीजोंके आघातको हर्षित या दुःखित, उत्साहित या निरुत्साहित हुए बिना किसी प्रकारकी उथल-पुथल या गोलमाल मचाये बिना सहन किया जाता है। चाहे जो भी हो तुम एकदम धीर-स्थिर और प्रशांत बने रहते हो। परंतु दोनों प्रकारकी समताएं आवश्यक हैं। सच पूछो तो बहुत तरहकी समताएं हैं। प्राणकी समता और शरीरकी समतासे पृथक् शुद्ध मनकी भी समता होती है। कहनेका तात्पर्य, सभी ओरसे सब प्रकारके विचार तुम्हारे मस्तकमें आ सकते हैं, यहांतक कि अत्यंत विरोधी विचार भी आ सकते हैं; फिर भी तुम अचंचल, विक्षोभहीन, और यहांतक कि उनके प्रति उदासीन बने रहते हो। तुम एक साक्षी हो, तुम उन्हें देखते हो, छांटते हो, व्यवस्थित करते हो, प्रत्येक विचारको उसके उचित स्थानमें रख देते हो, प्रत्येक विचारके मूल्य-महत्त्वको आंकते हो, प्रत्येक विचारका दूसरे विचारके साथ क्या संबंध है और फिर संपूर्ण विचारधाराके साथ क्या संबंध है — इस बातको निश्चित करते हो, पर तुम किसी एक विशिष्ट विचारकी लहरमें बह नहीं जाते।

व्यक्तिगत प्रयास और संकल्प

व्यक्तिगत प्रयासके अंदर एक प्रकारके आयासका, जोर पड़नेका बोध होता है: प्रयास व्यक्तिगत (अपना निजी) प्रतीत होता है अर्थात् तुम अपने-आपपर ही निर्भर करते हो और तुम्हें ऐसा लगता है कि पग-पगपर जो कुछ करनेकी आवश्यकता है उसे यदि तुम न करो तो सब गुड़ गोवर हो जायगा। संकल्प दूसरी चीज है। यह वह क्षमता है जिससे हम जो कुछ करते हैं उसपर एकाग्र होते हैं जिसमें कि वह कार्य अच्छी तरह किया जा सके और जबतक वह कार्य पूरा न हो जाय तबतक उसे उस तरह करते रहना जारी रखा जाय।

मान लो कि किसी खास परिस्थितिमें कोई काम तुम्हारे सिर आ गया है। उदाहरणके लिये एक कलाकार, चित्रकारको ले लो। चित्रकार प्रेरणा अनुभव करता है और उसने एक चित्र आंकनेका निश्चय किया है। वह अच्छी तरह जानता है कि यदि उसे प्रेरणा न प्राप्त हो तो वह कोई अच्छी चीज नहीं तैयार कर सकेगा, एक भद्दे चित्रके सिवा वह और कुछ तैयार नहीं कर सकेगा। अगर वह महज निष्क्रिय हो, न तो प्रयास करे न संकल्प, तो वह भगवान्‌से कहेगा: यहां मैं रख रहा हूं रंगका बक्स, कूची और चित्र बनानेका कपड़ा, अब तुम चित्रकारी कर दो। परंतु भगवान् इस तरह काम नहीं करते। स्वयं चित्रकारको ही सारी चीजोंकी व्यवस्था करनी होगी। अपने विषयपर एकाग्र होना होगा और पूर्णताके साथ कार्य करनेके लिये अपना सारा संकल्प लगा देना होगा। दूसरी ओर, यदि उसे प्रेरणा न मिली हो तो वह सब प्रकारके कष्ट उठा

सकता है और फिर भी अंतमें उसका कार्य अन्य हजारों उदाहरणों-के जैसा ही एक कार्य होगा, उससे अधिक कुछ नहीं। तुम्हें अनुभव करना होगा कि तुम्हारी चित्रकारी क्या अभिव्यक्त करना चाहती है और फिर तुम्हें जानना होगा या ढूंढ़ निकालना होगा कि उसे किस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है। एक महान् चित्रकार जो चित्र तैयार करने जाता है उसका लगभग एकदम ठीक-ठीक दर्शन उसे प्राप्त हो जाता है। और उसे दर्शन प्राप्त होता है और वह उस दर्शनको अभिव्यक्त करनेमें जुट जाता है। वह अपनी अंतर्दृष्टिके द्वारा जो कुछ स्पष्ट रूपमें देखता है उसीको यथासाध्य अविकल रूपमें उतारनेका प्रयास दिन-पर-दिन, एक संकल्प और चेतनाके साथ करता है। वह भगवान्के लिये कार्य करता है; उसका समर्पण सचेष्ट और सक्रिय होता है। कविके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। जो भी आदमी भगवान्के लिये कुछ भी करना चाहता है, उसके विषयमें यही बात लागू होती है।

भगवान्के साथ पूर्ण एकत्व

यह कैसे अनुभव किया जाय कि हम भगवान्के हैं और भगवान् हमारे अंदर कार्य कर रहे हैं?

मस्तिष्कके द्वारा नहीं, यद्यपि मनुष्य बराबर ही उसीसे आरंभ कर सकता है; क्योंकि ज्योति सबसे पहले मस्तिष्कका ही स्पर्श करती है। तुम्हें अपनी बोधशक्तिके द्वारा अनुभव करना होगा, अर्थात् उस ज्वलंत अभीप्साके अंदर उसे भाप लेना होगा जो अपनेको चरि-

तार्थं करनेकी चेष्टा कर रही हैं। कभी-कभी किसी पहलवानको ऐसा हो सकता है। मान लो, तुम एक भारी वजन उठानेकी चेष्टा कर रहे हो और उसपर बहुत गंभीर रूपमें एकाग्र हो गये हो। अचानक, बिना जाने ही कि यह कैसे हुआ, तुम अनुभव करते हो कि कोई दूसरी शक्ति उसे ऊपर उठा रही है, किसी चीजने तुम्हारे हाथों-को अधिकृत कर लिया है और वही इस असंभव कार्यको उनके द्वारा करा रही है। उस समय शरीरके अस्तित्वका कोई भान नहीं होता। बहुतसे लेखकोंको भी ऐसा ही अनुभव होता है। उनके अंदर कोई ऐसी चीज जो उनका अपना स्वरूप नहीं होती, विचार करती है, बहुत अधिक स्पष्ट रूपमें देखती है, उनसे अनंततः अधिक सचेतन होती है और विचारों तथा शब्दोंको सजाती है। स्वयं लेखक नहीं लिखता बल्कि यह दूसरी चीज ही लिखती है। ऐसे समयोंपर मनुष्य-का तुच्छ व्यक्तित्व जो संघर्ष करता और प्रयास करता है, वहां बिलकुल नहीं होता। अवश्य ही इस अनुभवके पूर्ण होनेके लिये और इसमें कोई बाधा न आने देनेके लिये भौतिक व्यक्तित्वको जहां-तक संभव हो वहांतक शांत-स्थिर बनाये रखना चाहिये।

ऐसी अनुभूति प्राप्त करनेके लिये तुम्हारे अंदर सबसे पहले उस-के लिये संकल्प होना चाहिये; तुम्हें उसकी इच्छा और अभीप्सा करनी चाहिये, अधिकाधिक कम अहंकारपूर्ण बननेकी कोशिश करनी चाहिये, एक विशिष्ट व्यक्ति होनेकी भावनाको क्रमशः घटाते जाना चाहिये। फिर तुम्हारे अंदर यह ज्योति, यह तीव्र आकांक्षा, एकत्व-की इस आवश्यकताका बोध होना चाहिये। यह एक प्रकारका प्रोज्ज्वल उत्साह है जो तुम्हें अधिकृत कर लेता है, भगवान्में घुल-मिल जाने और उनसे अलग न रहनेकी एक अदम्य प्रयोजनीयता है। सच है, यह एक ऐसी अवस्था है जो बहुत देरतक नहीं बनी रहती—

आरंभमें – उसके बाद तुरत ही तुम्हें उसका उलटा अनुभव मिलता है। परंतु तुम यदि प्रयास जारी रखो, अपने संकल्प और अपनी अभीप्साको बनाये रखो तो दूसरी अवस्था फिर आ जायगी। कुछ समयतक, जबतक कि पूर्ण विलयन साधित नहीं हो जाता, दोनों स्थितियां बारी-बारीसे आती रहती हैं। अंतमें तुम्हारी व्यक्तिगत सत्ता और भागवत सत्तामें अब कोई विभेद नहीं रह जाता, दोनों मिलकर एक हो जाती हैं। उस समय किसी वस्तुकी उत्कंठाकी स्थिति, आत्मदान करनेका आनंदपूर्ण बोध अब नहीं होता जिसमें कि दोनों फिर भी अलग-अलग होती हैं। मिल-जुल जाने और एकाकार हो जानेकी, परिपूर्ण तादात्म्यकी स्थिति अत्यंत ही सरल और बिल्कुल ही स्वाभाविक हो जाती है। मैंने एक बार पेरिसमें एक भारतीय सूफीसे चेतनाकी इस स्थितिकी बात सुनी थी। उन लोगोंको भी इसकी बात मालूम थी।

तब क्या वह अंतिम अवस्था है, उसके बाद फिर प्रगति नहीं होती?

प्रगतिका कोई अंत नहीं है। क्योंकि, यह पूर्ण एकत्व शरीरका रूपांतर होनेसे पहले ही घटित हो सकता है। एकत्व चेतनाकी एक चीज है। भौतिक चेतना और भौतिक जड़तत्त्वके बीच भी बहुत अधिक अंतर है। अत्यंत उन्नत योगी भौतिक चेतनामें उस सिद्धितक पहुंच सकता है, परंतु इससे भौतिक जड़तत्त्व भी उसमें समाविष्ट नहीं हो जाता। स्थूल शरीरका रूपांतर भूतकालमें नहीं किया गया और न शायद उसके लिये प्रयास ही किया गया। यह केवल तभी किया जा सकता है जब कि जीवनको काफी लंबे समयतक बनाये रखा जाय; तुम तबतक शरीर नहीं छोड़ते जबतक कि तुम उसके लिये इच्छा नहीं करते और इस तरह उस परिवर्तनको लानेके लिये

आवश्यक समय तुम्हारे हाथमें रहता है। श्रीअरविंदने एक बार कहा था — और उन्होंने जरा भी हिचकिचाये बिना ऐसा कहा था— कि इसे करनेमें लगभग तीन सौ वर्ष लग जायेंगे और मैं इसमें इतना और जोड़ सकती हूं कि भगवान्‌के साथ प्राप्त एकत्वकी जिस अंतिम स्थितिका मैंने वर्णन किया है उसकी सिद्धिके बाद उतने दिन लगेंगे।

मैं कह दूं कि यह तीन सौ वर्षका समय तो कम-से-कम है। अब तुम्हें अनुभव करना चाहिये कि शरीरको रूपांतरित करनेका अर्थ क्या है। शरीर अपने सभी अवयवों और क्रियाओंके साथ तुम्हारी चेतनाके हस्तक्षेपके बिना ही अपने-आप कार्य करता है और यह एक पशूचित योजनाके अनुसार बना हुआ है। यदि तुम्हारा हृदय सेकंडके एक सौंवे भागके लिये भी बंद हो जाता है तो तुम्हारा शरीर मृत हो जाता है। तुम अपने किसी एक अंगके बिना काम नहीं चला सकते और तुम्हें उनकी यथार्थ क्रियाके ऊपर निगरानी रखनी ही होगी। रूपांतरका अर्थ है इस विशुद्ध स्थूल व्यवस्थाको हटाकर उसकी जगह एक विशेष पद्धतिसे शक्तियोंको केंद्रीभूत करना। तुम्हें एक विशेष प्रकारके प्रकंपनोंके अनुसार शक्तियोंको सुव्यवस्थित करना होगा, प्रत्येक अंगके स्थानमें उस आत्मसचेतन शक्तिका एक केंद्र स्थापित करना होगा जो एक उच्चतर शक्तिके केंद्रीभूत होनेकी क्षमताके द्वारा कार्यसंचालन करती है। फिर तो न कोई उदर रह जायगा न हृदय। ये चीजें प्रकंपनकी एक व्यवस्थाको स्थान देंगी जो उस वस्तुका प्रतिनिधित्व करती है जो ये वास्तवमें हैं। स्थूल अवयव शक्ति-केंद्रोंके सूचक हैं; वे मूल वस्तु नहीं हैं, वे विशेष परिस्थितियों-के अधीन उसे एक सांचा या आकृति प्रदान करते हैं। रूपांतरित शरीर अपने सच्चे शक्ति-केंद्रोंके द्वारा कार्य करेगा, पशु-शरीरमें विक-

सित उनके प्रतिनिधियोंके द्वारा नहीं। उसके लिये तुम्हें सबसे पहले इन केंद्रों और इनकी क्रियाओंके विषयमें सचेतन होना होगा; एक अचेतन यंत्रवत् क्रियाके स्थानमें एक सचेतन नियंत्रणकी क्रिया होनी ही चाहिये। इस तरह हमारे हाथोंमें भौतिक पशुसुलभ अंग ही नहीं रहेंगे बल्कि सांकेतिक प्रकंपन, सांकेतिक शक्तियां होंगी। इस-का मतलब यह नहीं है कि ऐसा कोई सुनिश्चित आकार रहेगा ही नहीं जिसे पहचाना जा सके। तब आकार ठोस (धूलिके) कणोंके बदले गुणोंके द्वारा निर्मित होगा। वह, हम कह सकते हैं कि, एक व्यावहारिक या कार्योपयोगी आकार होगा; वह कठोर और ठोस स्थूल आकारसे भिन्न, कोमल और तरल होगा। जिस तरह तुम्हारे हृद्गत भाव, आवेगके साथ-साथ तुम्हारे चेहरेका भाव बदल जाता है, ठीक उसी तरह आंतरिक क्रियाकी आवश्यकताके अनुसार शरीर भी परिवर्तित होगा। क्या तुम्हें अपने स्वप्नमें इस प्रकारका अनुभव कभी नहीं हुआ है? तुम हवामें ऊपर उठ जाते हो और तुम मानो अपनी कोहनीसे एक ओर धक्का देते हो और तुम्हारा शरीर उसी ओर फैल जाता है; तुम अपने पैरसे एक ठोकर मारते हो और तुम कहीं दूसरी जगह जा पहुंचते हो; तुम इच्छा करते ही पारदर्शक बन सकते हो और बड़ी आसानीसे एक ठोस दीवालके उस पार चले जा सकते हो! रूपांतरित शरीर बहुत कुछ इसी ढंगसे आचरण करेगा; वह हलका, उज्ज्वल, रबड़ जैसा लचकीला होगा। हलका-पन, उज्ज्वलता और लचकीलापन ही उस शरीरके एकदम मौलिक गुण होंगे।

ऐसा शरीर तैयार करनेके लिये ३०० वर्ष कुछ नहीं है; यहां-तक कि हजार वर्ष भी बहुत अधिक नहीं होगा। निश्चय ही मैं इसी शरीरकी बात कह रही हूं। यदि तुम बीचमें ही अपने शरीर-

को परिवर्तित कर लो तो वह ठीक वह शरीर कभी नहीं होगा। ५० वर्षकी उम्रमें शरीर क्षीण होना आरंभ कर देता है। परंतु, उसके विपरीत, यदि तुम्हारे पास ऐसा शरीर हो जो पूर्णताकी ओर अग्रसर होता जा रहा हो, अगर प्रत्येक बीतनेवाला वर्ष उसके लिये प्रगतिका एक पग सूचित करनेवाला हो तो तुम अनंत कालतक जीवित रह सकते हो: क्योंकि आखिरकार, तुम अमर हो।

एक दूसरी कठिनाई है जिसका सामना हमें रूपांतरके कार्यमें करना पड़ता है। किसी विशेष शरीरको तबतक परिवर्तित नहीं किया जा सकता जबतक कि उससे मिलता-जुलता थोड़ा-सा परिवर्तन आस-पास रहनेवाले शरीरों तथा सामान्य रूपसे चारों ओरके वातावरणमें भी नहीं लाया जाता; क्योंकि मनुष्य अन्य लोगोंके बीच पारस्परिक आदान-प्रदानके सहारे जीता और चलता-फिरता है। और सामूहिक परिवर्तन व्यक्तिगत परिवर्तनकी अपेक्षा अधिक समय लेता है। अतएव सच पूछा जाय तो यह कार्य व्यक्तिगत चेतनाको नहीं वरन् समष्टिगत चेतनाको करना है।

संसार प्रगति कर रहा है। और संसारमें रहनेके कारण तुम्हें भी प्रगति करनी ही होगी। परंतु यह प्रगति ऐसी है जिसे भगवान् तुम्हारे अंदर तुम्हारे जाने बिना ही या तुम्हारे सहयोगके बिना ही साधित करते हैं। अतएव यह प्रगति बहुत धीमी होती है; प्रकृति जो समय अपने कार्यमें बिताती है उसका वह हिसाब नहीं लगाया करती, उसके सामने तो शाश्वत काल पड़ा हुआ है और उसे कोई जल्दी नहीं है। उसकी अग्रगतिके अंदर शताब्दियां और सहस्राब्दियां महज एक क्षणके समान हैं। जिस लक्ष्यको उसने अपने सामने रखा है वहां वह एक दिन अवश्य पहुंचेगी, यहांतक कि शरीरके पूर्ण रूपांतरको तथा अतिमानवके आविर्भावको भी वह साधित

करेगी। परंतु मनुष्य यदि ज्ञानपूर्वक सहयोग दे तो यह काम शीघ्र पूरा हो सकता है। अधिकांश लोग, निश्चय ही मनुष्योंकी बहुत बड़ी संख्या अपने अंदर होनेवाले भगवान्के कार्यके विषयमें सचेतन नहीं होती। सचेतन होनेका अभिप्राय है जो कुछ हो रहा है उसके प्रति सजग होना, ग्रहणशील होना तथा उसके प्रभावके प्रति निष्क्रिय बने रहना। जितना ही अधिक तुम अपने-आपको दे दोगे और जितना ही अधिक तुम सच्चे होगे, उतनी ही अधिक शीघ्रता और सुनिश्चितताके साथ तुम्हारी सिद्धि भी आयेगी। जिस कार्यको करनेमें अन्यथा वर्षों लग जाते उसे ही तुम कुछ थोड़ेसे क्षणोंमें कर सकते हो। यही योगका उद्देश्य है।

सच्चाई ही विजय है!

सच्चा होना और सरल-सीधा होना एक बात नहीं है। सरल-सीधा होनेका अर्थ है एक ऐसे भोलेपनका होना जो अधिकांशमें वस्तु-विषयक अज्ञानके ऊपर आधारित होता है। एक बच्चा सीधा-सरल होता है, क्योंकि वह भोला और अज्ञ होता है तथा कुछ भी छिपाता नहीं; वह ऐसा करनेमें असमर्थ होता है और उसे किसीको धोखा देनेकी इच्छा नहीं होती। परंतु सच्चाई दूसरी चीज है।

सच्चाई प्राप्त करना अत्यंत कठिन कार्य है, पर यह सब चीजोंसे अधिक अमोघ भी है। अगर तुममें सच्चाई है तो तुम्हारी विजय सुनिश्चित है। परंतु वह यथार्थ सच्चाई होनी चाहिये। सच्चाई-का तात्पर्य यह है कि तुम्हारी सत्ताके सभी अंग, उसकी सभी क्रियाएं, उनमेंसे हरएक, अत्यंत आध्यात्मिकसे लेकर अत्यंत भौतिकतक,

अत्यंत भीतरीसे लेकर अत्यंत बाहरीतक, अत्यंत ऊपरीसे लेकर अत्यंत निचलीतक, एक-एक क्रिया, सभी भाग, अलग-अलग और संपूर्ण रूपमें तथा एक समान भगवान्‌की ओर मुड़े हुए हों, भगवान्‌के सिवा अन्य कोई चीज न चाहें, वे भगवान्‌के लिये और भगवान्‌के सहारे जीवित रहें।

और यह कोई आसान बात नहीं है। एक अंशमें सच्चा होना, मोटे तौरपर सच्चा होना, कभी-कभी सच्चा होना काफी आसान है; इतनीसी सच्चाई तो प्रत्येक आदमीमें हो सकती है या प्रत्येक आदमी प्राप्त कर सकता है। सामान्य शुभेच्छा रखनेवाले किसी भी मानव-प्राणीकी क्षमताके अंदर यह बात है कि वह अपनी चैत्य क्रियाओंमें सच्चा हो, यद्यपि ऐसी क्रियाएं भी कम ही होती हैं। परंतु अपने भौतिक शरीरके एकदम कोषोंतकमें सच्चा होना और भी अधिक विरल और कष्टसाध्य सिद्धि है। अपने शरीरके कोषोंको इतना एकमुखी बना देना कि वे भी यह अनुभव करने लगें कि वे भगवान्‌के लिये और भगवान्‌के अंदर तथा भगवान्‌के सहारे जीनेके सिवा अन्य किसी तरह नहीं जी सकते — बस यही है यथार्थ सच्चाई और इसे ही तुम्हें प्राप्त करना होगा।

सबसे पहले तुम्हें इस बातपर ध्यान रखना होगा कि तुम्हारे जीवनमें एक भी दिन, एक भी घंटा, यहांतक कि एक भी मिनट ऐसा नहीं है जब कि तुम्हें अपनी सच्चाईको सुधारने या तीव्र बनानेकी आवश्यकता न हो। मैं यह नहीं कहती कि तुम भगवान्‌को धोखा देते हो। कोई भी आदमी भगवान्‌को धोखा नहीं दे सकता, यहांतक कि बड़े-से-बड़े असुरतक नहीं दे सकते। जब तुम यह समझ गये हो तब भी तुम अपने दैनंदिन जीवनमें ऐसे क्षण बराबर पाओगे जब कि तुम अपने-आपको धोखा देनेकी कोशिश करते

हो। प्राय: स्वाभाविक रूपमें ही तुम जो कुछ करते हो उसके पक्षमें युक्तियां पेश करते हो। मैं अधिक स्थूल विषयोंकी चर्चा नहीं करती, जैसे, जब तुम किसी आदमीसे झगड़ते हो तो तुम क्रोधके आवेशमें सारा दोष उसीपर थोप देते हो। मैं एक बच्चेको जानती हूं जिसने दरवाजेपर बड़े जोरसे आघात किया,—क्योंकि उसने समझा कि दोष दरवाजेका ही था। सदा विपक्षी ही दोषी समझा जाता है। परंतु जब तुम इस बाल-अवस्थाके परे चले गये हो, जब यह माना जाता है कि तुम थोड़ा अधिक समझदार हो गये हो, तब भी तुम अत्यंत मूर्खतापूर्ण कार्य करते हो और अपने पक्षका समर्थन करनेके लिये युक्तियां पेश करते हो। सच्चाईकी सच्ची कसौटी, यथार्थ सच्चाईकी एकदम कम-से-कम मात्रा बस यहीं है, एक दी हुई परिस्थितिमें होनेवाली तुम्हारी प्रतिक्रियाके अंदर, आया तुम सहज भावसे यथार्थ मनोभाव ग्रहण करते हो या नहीं और जो कार्य करना है ठीक उसी कार्यको करते हो या नहीं। जब, उदाहरणार्थ, कोई क्रोधमें आकर तुमसे बोलता है तब क्या तुम्हें भी उसकी छूत लग जाती है और तुम भी क्रोधित हो जाते हो या तुम एक अडिग शांति और स्वच्छता बनाये रखने, दूसरे व्यक्तिकी युक्तिको देखने या समुचित रूपमें आचरण करनेमें समर्थ हो?

बस, यही है, मेरी रायमें, सच्चाईका एकदम आरंभ, उसका प्राथमिक तत्त्व। और, अगर तुम अधिक पैनी आंखोंसे अपने अंदर देखो तो तुम वहां हजारों असच्चाइयोंको पाओगे जो अधिक सूक्ष्म हैं, पर जो इसी कारण पकड़ी जाने योग्य न हों ऐसी बात नहीं। सच्चा बननेकी चेष्टा करो और ऐसे अवसर बढ़ते ही जायेंगे जब तुम अपनेको सच्चा नहीं पाओगे: तब तुम समझ जाओगे कि सच्चा बनना कितना कठिन कार्य है। तुम कहते हो कि तुम्हारा संबंध

भगवान्‌के साथ है, एकमात्र भगवान्‌के साथ है, और किसी वस्तु या व्यक्तिके साथ नहीं है; "भगवान् ही मुझे चलाते हैं और मेरे अंदर सब कुछ करते हैं।" और उसके बाद तुम जो कुछ पसंद करते हो उसे ही करते हो; तुम अपनी वासनाओं और आवेगोंकी तृप्तिको ढक रखनेके लिये एक आवरणके रूपमें भगवान्‌का व्यवहार करते हो। यह भी एक बहुत बड़ी असच्चाई (कुटिलता) है और इसे पहचानना तुम्हारे लिये कठिन नहीं होना चाहिये। यद्यपि यह बहुत ही व्यापक छल-कपट है, पर संभवतः अपनेको धोखा देनेकी अपेक्षा कहीं अधिक दूसरोंको धोखा देनेके लिये है। मन एक विचार-को पकड़ लेता है, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (यह सब ब्रह्म है), "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूं),—और तुम विश्वास करने लगते हो या विश्वास करनेका बहाना करने लगते हो कि तुमने इस अवस्थाको प्राप्त कर लिया है और तुम कोई भूल नहीं कर सकते। इसके अलावा कुटिलताकी या सच्चाईके अभावकी सूक्ष्मतर क्रियाएं भी होती हैं जब कि अपनी भूलोंको ढकनेवाले परदेके रूपमें तुम भगवान्‌का जामा नहीं पहने होते। जब तुम समझते हो कि तुम सच्चे हो तब भी तुम्हारे अंदर कुछ ऐसी क्रियाएं हो सकती हैं जो बिलकुल सीधी न हों, जिनके पीछे, यदि तुम निःसंकोच होकर बारीकीके साथ देखो तो, कुछ ऐसी चीजोंको गुप्त रूपसे बैठी हुई पाओगे जो काम्य नहीं हैं। छोटी-छोटी गतिविधियोंको, विचारों, इंद्रियानुभवों और आवेगोंको देखो जो तुम्हारे दैनिक जीवनकी सीमापर भीड़ किये हुए हैं; उनमेंसे कितने एकमात्र भगवान्‌की ओर मुड़े होते हैं, उनमेंसे कितने किसी उच्चतर वस्तुके लिये होनेवाली अभीप्सासे प्रज्ज्वलित होते हैं? यदि तुम उस तरहके दो-चार भी पाओ तो तुम्हें अपनेको भाग्यशाली ही समझना चाहिये।

जब मैं यह कहती हूं कि जब तुम सच्चे हो तब तुम्हारी विजय सुनिश्चित है, तब मेरा मतलब उसी तरहकी सच्चाईसे, संपूर्ण और अविभक्त सच्चाईसे होता है : उस विशुद्ध ज्वालासे होता है जो होमानलकी तरह जलती है, जो एकमात्र भगवान्‌के लिये जीनेका तीव्र आनंद है, जहां अन्य कोई चीज नहीं होती, किसी चीजका कोई अर्थ नहीं होता या भगवान्‌में होनेके सिवा किसी चीजके अस्तित्वका कोई कारण नहीं होता। यदि, परात्पर सत्यके लिये, इस 'सर्वके' लिये जिसे हम भगवान् कहते हैं, यह पुकार, यह अभीप्सा, यह उद्‌घाटन न हो तो किसी बातका कोई मूल्य नहीं होता, किसी बातमें कोई रस नहीं मिलता। तुम्हें बस उसी कारणके लिये कार्य करना होगा जिसके लिये यह विश्व विद्यमान है : उसे अलग कर दो, बस सब कुछ विलीन हो जायगा।

देवी-देवताओंकी मूर्तियां

क्या देवी-देवताओंकी प्रचलित मूर्त्तियां यथार्थ सद्वस्तुकी दृष्टिसे ठीक हैं?

अच्छा, बतलाओ तो, जब कोई छोटा-सा बच्चा किसी चीजका चित्र बनाता है तब क्या वह उस चीजसे मिलता-जुलता है? यहां बात प्रायः ऐसी ही है या इससे भी अधिक बुरी। क्योंकि बच्चा सरल और सच्चा होता है, जब कि मूर्त्ति-निर्माता संस्कारों और पूर्वनिर्धारित भावनाओंसे भरा होता है, सुनी या पढ़ी हुई चीजोंसे भर-

पूर होता है। और फिर वह अपनी रचनाओंसे बंधा होता है। परंतु कभी-कभी, जहां-तहां, अवश्य ही बहुत कम, आंतर दृष्टिसे संपन्न, अंतरात्माकी एक महान् अभीप्सा तथा महान् पवित्रतासे भरे हुए कलाकार दिखायी देते हैं, वे ऐसी चीजें तैयार करते हैं जो ग्रहणीय होती हैं। परंतु ऐसे लोग अपवाद ही होते हैं, साधारण नियम तो इसके विपरीत ही होता है।

मैंने इनमेंसे कुछ आकारोंको प्राणमय लोकमें और मनोमय लोकमें भी देखा है। वे सचमुचमें मनुष्यकी रचनाएं हैं। एक दिव्य शक्ति है जो परेके लोकसे अभिव्यक्त होती है, पर अज्ञानके इस त्रिविध जगत्में स्वयं भगवान्को भी मनुष्य अपनी ही आकृतिके अनुरूप रचता है और जो सत्ताएं यहां प्रकट होती हैं वे कम या अधिक रूपमें सृजनशील मानव-विचारका ही परिणाम होती हैं। अतएव कभी-कभी हमें ऐसी चीजें मिलती हैं जो सचमुच भयावह होती हैं। मैंने ऐसी रचनाएं देखी हैं जो कितनी अंधकारपूर्ण, कितनी दुर्बोध, और कितनी अभिव्यंजनाशून्य हैं! कुछ ऐसी दिव्य सत्ताएं हैं जिनके साथ दूसरोंकी अपेक्षा बहुत अधिक अन्याय किया गया है। उदाहरणके लिये बिचारी उस महाकालीको ले लो। मनुष्यने उसे कैसा बना दिया है, जंगली जैसी भयंकर, एक कल्पनातीत दुःस्वप्न! ऐसी रचनाएं बहुधा अत्यंत निम्नतम जगत्में, निम्नतम प्राणमय लोकमें रहती हैं; और अगर इसमें मूल सत्ताका कुछ भी अंश हो भी तो वह ऐसी एक दूरकी छाया भर ही होती है जिसे कठिनाईसे पहचाना जा सकता है। और फिर भी इसी चीजको मानव-चेतना खींच लाती है। उदाहरणार्थ, जब कोई मूर्त्ति तैयार होती है और प्रतिष्ठित की जाती है और पुरोहित उसमें एक आकारको, किसी देवताकी एक अंशविभूतिको, एक आंतरिक आवाहनके द्वारा — साधारणतया

इस विषयकी एक पूरी पूजा-पद्धति होती है — उतार लाता है, और यदि पुरोहित आह्वान करनेकी शक्ति रखनेवाला कोई व्यक्ति होता है, तब वह कार्य सफल होता है (जैसा कि रामकृष्णने काली-मंदिरमें किया था)। परंतु साधारण तौरपर पुरोहित ऐसे लोग होते हैं जो अत्यंत सामान्य विचार रखते हैं और उनकी शिक्षा-दीक्षा अत्यंत परंपरागत होती है; जब वे देवताओंकी बात सोचते हैं तब वे उन्हें ऐसे रूप और गुण दे देते हैं जो प्रचलित होते हैं, जो सामान्यतया प्राणमय लोककी सत्ताओंसे संबंध रखते हैं, अच्छे-से-अच्छे रूपमें मानसिक रचनाओंसे संबंध रखते हैं, परंतु जो किसी भी रूपमें पीछेकी ओर विद्यमान सत्ताओंके सत्यको नहीं प्रकट करते। मंदिरोंकी या घरोंके देवताओंकी सभी मूर्त्तियोंमें, जिन्हें बहुतसे लोग पूजते हैं, ऐसी सत्ताएं रहती हैं जो केवल यही जानती हैं कि किस प्रकार तुम्हें दुःख और विपत्तिमें ले जाया जा सकता है। वे उस देवत्वसे अत्यंत दूर होती हैं जिसकी लोग पूजा करना चाहते हैं। कुछ परिवारोंमें ऐसी काली-मूर्त्तियां हैं जो सच्ची राक्षसियां हैं। मैंने कुछ लोगोंको यह भी सलाह दी है कि वे ऐसी मूर्त्तिको गंगामें फेंक दें जिसमें कि वे उससे निकलनेवाले बुरे प्रभावसे मुक्त हो जायं। परंतु कोई संदेह नहीं कि इसमें दोष सदा मनुष्यका ही है, देवत्वका नहीं। क्योंकि मनुष्य अपने देवताओंको अपनी ही प्रतिमूर्त्तिके रूपमें रचनेकी इतनी अधिक इच्छा करता है!

विषय-सूची

भाग १

खंड १

खंड २

खंड ३

खंड ४

अधिकांश लोग, निश्चय ही मनुष्योंकी बहुत बड़ी संख्या अपने अंदर होनेवाले भगवान्के कार्यके विषयमें सचेतन नहीं होती। सचेतन होनेका अभिप्राय है जो कुछ हो रहा है उसके प्रति सजग होना, ग्रहणशील होना तथा उसके प्रभावके प्रति निष्क्रिय बने रहना। जितना ही अधिक तुम अपने-आपको दे दोगे और जितना ही अधिक तुम सच्चे होगे, उतनी ही अधिक शीघ्रता और सुनिश्चितताके साथ तुम्हारी सिद्धि भी आयेगी। जिस कार्यको करनेमें अन्यथा वर्षों लग जाते उसे ही तुम कुछ थोड़ेसे क्षणोंमें कर सकते हो। यही योगका उद्देश्य है।

—श्रीमाताजी

★

अदिति पुस्तकमाला — अतिरिक्त पुष्प
मूल्य रु. ३.००
1.50